२५वां
वर्ष

अक्तूबर - दिसंबर २००४

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

डॉ. देवेंद्र सिंह
डॉ. सोहन शर्मा
सैली बलजीत
नरेंद्र कौर छाबड़ा
संगीता आनंद

सागर-सीपी
डॉ. जगदंबा प्रसाद दीक्षित

•

आमने-सामने
प्रकाश श्रीवास्तव

१५
रुपये

YOUR SINGLE SOURCE FOR SUPPLY OF A WIDE RANGE OF WELDING MATERIAL FOR SPECIAL APPLICATIONS

WE STOCK A LARGE VARIETY OF IMPORTED CONSUMABLES AND EQUIPMENTS TO SUIT DIFFERENT APPLICATIONS

C. Steel - Solid & FCAW	:	65G, TGS-50, MGS - 50
Cr-Mo type solid wire	:	TGS-M, TGS - 1CM, TGS - 1CML, TGS - 2CM TGS -2CML, TGS-5CM, TGS-9CM, TGS-9Cb
Ni Alloyed solid wire	:	TGS-1N, TGS-3N & also 2.5%Ni type
S. Steel-solild & FCAW	:	308L/308H/316L/316H/347/347H/317L/309L /309H/318/320L/383/385/2209/630
Aluminium & Alloys	:	Pure Al (1100), 5% Al (4043), 5% Mg (5356)
Copper & Copper Alloys	:	Tin & Si Bronze, Alum Bronze with and without Nickel
Nickel & Nickel Alloys	:	Nickel 61/141, Monel 60/190, 67/187, Inconel 625/112, 82/182, C-276, 622, 617, 601, HX & 686 CPT
Titanium	:	Grades 1.5.7. & 12

We are authorised distributors of

INCO ALLOYS INTERNATIONAL - *U.K.*,

KOBE STEEL LTD - WELDING DIVISION *Japan*

Panasonic **NATIONAL PANASONIC,** *Japan*

KEMPPI The Joy of Welding **KEMPPI OY** - *Finland*

We also market welding Consumable Inserts, Backing Flux, Soluble Dam Paper for Purging & Gas Mixer for MIG Process

WELDWELL™

WELDWELL SPECIALITY PVT. LTD./ NIVEK AGENCIES

104, Acharya commercial Centre, Dr. C. Gidwani Road, Chembur, Mumbai 400 074.
Tel. : (022) 2558 2746 / 2550 3770 / 2551 5523, • Fax : (022) 2556 6789 / 2556 9513
E-mail : ccg@weldwell.com • web site: www.weldwellspeciality.com

RKS 2K 02

अक्तूबर - दिसंबर २००४
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१५५४१
e-mail : kathabimb@yahoo.com

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक
अरुण सक्सेना
फोन : २३६८ ३७७५

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ५ || बिरादरी / **डॉ. देवेंद्र सिंह**
|| ९ || आत्महंता / **डॉ. सोहन शर्मा**
|| १३ || चक्रव्यूह / **सैली बलजीत**
|| २२ || खेल / **नरेंद्र कौर छाबड़ा**
|| २५ || एक थी सांवली / **संगीता आनंद**

लघुकथाएं

|| ८ || उसकी व्यथा / **नरेंद्र आहूजा 'विवेक'**
|| ३५ || अठारवां वसंत / **राजकमल सक्सेना**
|| ३९ || सर्विस बुक / **आनंद बिल्थरे**
|| ४९ || यीशु कृपा / **प्रताप सिंह सोढ़ी**
|| ४९ || जुड़ाव / **सतीश राठी**

कविताएं / ग़ज़लें / नज़्म

|| २१ || बहुत दिनों के बाद... / **सुधीर अग्निहोत्री**
|| ३४ || ग़ज़लें / **प्रकाश श्रीवास्तव**
|| ४८ || महंगाई हो गयी सस्ती / **डॉ. रीता हजेला 'आराधना'**
|| ४८ || पेड़ नहीं होते कभी नंगे / **ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'**
|| ४८ || गहराता हुआ रिश्ता / **ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'**
|| ४९ || ग़ज़लें / **नूर मोहम्मद 'नूर'**
|| ४९ || नज़्म (जन्नत बनाये चलें...) / **राजेंद्र स्वर्णकार**

स्तंभ

|| २ || लेटरबॉक्स
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| ३१ || आमने-सामने / **प्रकाश श्रीवास्तव**
|| ३६ || सागर-सीपी / **डॉ. जगदंबा प्रसाद दीक्षित**
|| ४० || वातायन / **गजेंद्र यथार्थ**
|| ४१ || पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण फोटो : *जमित सक्सेना*

लेटर बॉक्स

कॉलेज के प्रथम वर्ष में जब लिखने-पढ़ने का शौक़ जगा था, उन्हीं दिनों से मैं 'कथाबिंब' की प्रशंसा पढ़ता-सुनता आ रहा हूं. पी. जी. करने के बाद पत्रकारिता के पेशे में आ गया. जब कभी 'कथाबिंब' का कोई अंक कहीं देखने को मिला है, बिना आद्योपांत पढ़े नहीं रह पाया हूं.

मुझे यह देखकर सचमुच गर्व होता है कि इस घोर व्यावसायिक और गलाकाट प्रतिस्पर्धा के दौर में भी 'कथाबिंब' त्रैमासिक इतने लंबे समय से साहित्य की सेवा करती आ रही है.

संजय कुमार

राम आशा सदन, नलकूप भवन के पूरब,
सर्वोदय नगर, शास्त्री नगर, पटना-८०० ०२३.

'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर ०४ अंक मिला. इस अंक में डॉ. तारिक़ असलम 'तस्नीम' का आलेख 'मुस्लिम समाज के बंद दरवाज़े' मैं इसके अतिरिक्त चार-पांच पत्रिकाओं में पढ़ चुका हूं. उन्होंने अभी ही साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया है और वे सलमान रश्दी और तस्लीमा नसरीन से अपने को जोड़कर लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचना चाहते हैं. उनकी इस लघुकथा में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस्लाम की असलियत दिखा सके. यदि वे सचमुच ऐसा करना चाहते हैं, तो क़ुरान की उन आयतों की निंदा करें जिनमें सभी ग़ैर मुस्लिमों को काफ़िर मान कर उन्हें यातना देने और उनका वध करने की अनुमति दी गयी है. वे अखिल इस्लामवाद और इस्लामिक आतंकवाद की खुलकर निंदा करें. रमज़ान के ढकोसले और त्योहारों में जीव हिंसा की आलोचना करें. मुस्लिम आक्रांताओं ने जो ज़ुल्म किये हैं, उन पर प्रभावशाली साहित्य की रचना करें. अभी सुन्नी बोर्ड ने अंतर्राष्ट्रीय महत्व के ताजमहल पर अपने स्वामित्व का दावा किया है, उसके संबंध में भी अपनी लेखनी को संचालित करें. एक छोटी-सी लघुकथा में ऐसा कुछ नहीं है, जो उन्हें किसी मुश्किल में डाल सके. हिंदुओं के पंडों, पुजारियों, ब्राह्मणों आदि के संबंध में तो विवेकानंद सरीखे विचारकों ने इन्हें सर्प कहा है. डॉ. तारिक़ असलम के लिए सलमान रश्दी और तस्लीमा नसरीन की तरह किसी इमाम ने कोई फ़तवा जारी नहीं किया है, फिर भी वे लोगों को बेवक़ूफ़ बनाने के लिए व्यर्थ का ढोल पीट रहे हैं. उन्होंने अभी तक किसी ऐसे साहित्य का सृजन भी नहीं किया है, जिसे विशेष महत्व दिया जा सके. मैं यह सब किसी द्वेष से नहीं लिख रहा हूं. मैं तो उन्हें जानता तक नहीं, परंतु इस तरह के छद्म से दुख होता है. वे इराक़ की बात करते हैं, भारत की क्यों नहीं ? मेरे इस पत्र को आप प्रकाशित कर सकते हैं.

डॉ. परमलाल गुप्त

'नमस्कार,' बस स्टैंड के पीछे, सतना - ४८५००१ (म. प्र).

'कथाबिंब' के रजत जयंती वर्ष पर आपको हार्दिक बधाई ! मीडिया के इस मारक दौर और प्रतिदिन नयी तकनीक का प्रवेश सहते हुए भी किसी साहित्यिक पत्रिका को इतने वर्षों तक संभाले रखना अदम्य साहस, धैर्य और जुनून का परिचायक है.

आश्चर्य होता है यह देखकर कि जो काम अंग्रेज दो सौ वर्ष में नहीं कर पाये, वो हमारे नेता पचास सालों में ही कर बैठे, कि अंग्रेजी को हिंदी में प्रवेश करा कर हिंगलिश चैनेल पार करा दिया.

बैंक की नयी पीढ़ी टाई पहन कर अंग्रेजी बोलने में अपनी शान समझती है तो अंग्रेजी के पत्रकार हवाई ज़हाज से नीचे नहीं उतरते तथा अंग्रेजी में साक्षात्कार करना अपनी मेरिट मानते हैं. वहीं दूसरी ओर हिंदी फिल्मों के कलाकार भले ही अंग्रेजी न जानते हों लेकिन अंग्रेजी बोलने में गर्व महसूस करते हैं.

ख़ैर, आप जैसे कई दीवाने अभी भी हिंदी साहित्य के क्षेत्र में विद्यमान हैं जिस कारण हिंदी बची हुई है. आपका यह समर-सफ़र चलता रहे, यही कामना है.

'संभालिए अपना राजपाट !' रामदेव सिंह की कहानी अप्रैल-जून ०४ अंक की विशेष उपलब्धि के रूप में याद की जायेगी है.

कुशेश्वर

पी-१६६/ए, मुदियाली फर्स्ट लेन, कलकत्ता-७०० ०२४.

'कथाबिंब' के जुलाई-सितंबर ०४ अंक की सभी कहानियां प्रभावित करती हैं. 'आमने-सामने' में श्रीमती मंगला रामचंद्रन का वक्तव्य प्रेरक है. यह संघर्ष समाज की हर स्त्री को करना चाहिए. अपनी अभिव्यक्ति का एक न एक रास्ता अवश्य खोल लेना चाहिए, अन्यथा जीवन उनके लिए बहुत बोझिल सिद्ध हो सकता है. 'सागर-सीपी' में डॉ. त्रिभुवन राय द्वारा प्रस्तुत प्रबुद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा से बातचीत उनके विचारों की गहनता से परिपूर्ण है. डॉ. शर्मा ने इसमें अपने निष्पक्ष विचार रखे हैं. ये विचार एक खास सांचे में फिट लोगों को 'हिंदुत्ववादी' लग सकते हैं. क्या यह सही नहीं कि 'जब तक विदेशी पूंजी का प्रभाव रहेगा, हिंदी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती.' या फिर 'दुनिया में आज तक कोई ऐसी क्रांति नहीं हुई है, जिसका माध्यम विदेशी भाषा हो !'

'वातायन' में डॉ. तारिक़ असलम का लेख वस्तुतः मुस्लिम समुदाय के बीच बहस जगाने के लिए अधिक उपयुक्त है. अगर गहराई से देखा जाये तो उनकी लघुकथा 'चाहत' में सिर्फ़ दो ही बातें भिन्न हैं. पहली, लेखक स्वयं मुसलमान है और दूसरी, रचना के पात्र 'नमाज़ी' मौलाना हैं. अन्यथा तो पंडितों, पुजारियों और सन्यासियों को पात्र बनाकर हिंदी में ऐसी कितनी ही रचनाएं पहले लिखी जा चुकी होंगी. 'तस्लीम' से मैं यही कहना चाहूंगा कि वे अपने समुदाय की वैचारिक संकुचितता के प्रति लड़ते अवश्य रहें, परंतु अपनी रचनाओं को उसके प्रचार का माध्यम बनाने से बचें.

बलराज अग्रवाल

१/११९१९ उल्लधनपुर जैन मंदिर के सामने,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२.

❀ सर्वप्रथम 'कथाबिंब' के पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश के लिए बधाई स्वीकारें. कच्छप गति से ही सही, लेकिन आज 'कथाबिंब' ने मंज़िल पा ली है. आज स्थिति यह है कि कहानी की पत्रिकाओं की चर्चा 'कथाबिंब' के बिना अधूरी है. अप्रैल-जून ०४ अंक में भाई रामदेव सिंह की कहानी 'संभालिए अपना राजपाट' के साथ-साथ 'आमने सामने' में रामदेव सिंह का आत्मकथ्य *'मुझे अभी अपने लेखक को प्रमाणित करना है'* पढ़ा. जैसे-जैसे रामदेव सिंह के आत्मकथ्य को पढ़ता गया.... रोमांचित होता गया. उनका आत्मकथ्य पढ़ते हुए लगा जैसे यह रामेदव सिंह का नहीं, बल्कि ख़ुद मेरा अपना ही आत्मकथ्य है. उन्होंने लिखा है कि 'जब-जब मेरे लेखन के बीच गैप बढ़ता है और मैं अपनी व्यस्तता का रोना रोता हूं... लेखकीय निरंतरता न होने के मामले में मैं स्वयं भी कम दोषी नहीं हूं. कई चीज़ें एक साथ साधने के चक्कर में मेरा एक भी अच्छे से नहीं सधता है.' कमोबेश मैं भी अपने को उपरोक्त पंक्तियों का ही हिस्सेदार मानता हूं. रामदेव सिंह को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि न चाहते हुए भी समय-समय पर उन्होंने जो भी कहानी लिखी है... अच्छी लिखी है और लिखते भी रहते हैं. रेलवे में टी.टी.ई. की नौकरी है. वेतन पाते हैं फिर भी निज आवासविहीन हैं. सच मानिए, लगभग २३ वर्षों की सरकारी नौकरी के पश्चात् मैं भी आज तक वाराणसी जैसे नगर में निज आवास नहीं बना सका हूं और अब तो मैंने अपने घर का सपना भी देखना बंद कर दिया है. कारण, इतनी पूंजी पास में नहीं है. इस संदर्भ का आश्चर्यजनक पहलू तो यह भी है कि वाराणसी विकास प्राधिकरण की नौकरी है और मेरे विभाग का मुख्य कार्य ही छत विहीन लोगों को छत प्रदान करना है. अभी दो वर्ष पूर्व जब मुझे किराये का पुराना आवास बदलना पड़ा तो मुझे जीवन के एक नये, किंतु कठोर सच का सामना करना पड़ा. संभवतः यदि जीवन में कभी आलस्य त्यागने में सफलता मिली तो इस अनुभव से साहित्य जगत को कुछ दे सकूंगा. मैं गत दो वर्षों से ऐसे ही वक़्त की प्रतीक्षा कर रहा हूं, जिस प्रकार रामदेव जी अपने लेखन के लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं. भाई रामदेव सिंह के लिए मैं मित्र और चर्चित युवा कवि प्रकाश श्रीवास्तव की ये पंक्तियां दे रहा हूं जो संभवतः मेरे और उनके अपने लिए सर्वथा उपयुक्त व प्रेरणाप्रद हैं:

"ये अंधेरा मेरे अश्कों को छुपा लेता है ।
क्या करूंगा तिजारत की रोशनी लेकर ।।"

रामदेव जी, आप चिंता न करें मैं और मेरा वैवाहिक जीवन भी आपके ही पदचिन्हों पर है. होली और दीवाली तो मेरे लिए भी काली ही लगती है. अब तो मेरी भी पत्नी यह मान चुकी है कि जीवन का भौतिक सुख मेरे साथ शायद उसे जीवन भर न मिलेगा. वह कहती भी है कि आपके पास तो कभी पैसा ही नहीं रहता. अपने लिए किताब और पत्रिकाओं के पैसे कहां से लाते हैं ? मैं निरुत्तर ही रहता हूं.

❖ ब्रजेंद्र गर्ग
के. १९/११, ऊंचवा गली, राजमंदिर, वाराणसी - २२१ ००१.

❀ 'कथाबिंब' जु.-सिं. ०४ पढ़ा ! 'कुछ कही, कुछ अनकही' के अंतर्गत आपकी बात पढ़ी ! आपकी यह दलील तो क़ाबिले ग़ौर है कि 'जनता की सरकार, जनता द्वारा, जनता के लिए' की भावना के अनुरूप प्रधानमंत्री न बनना दोषपूर्ण प्रणाली है. प्रधानमंत्री यदि सीधे जनता चुने तो बेहतर होगा ! लेकिन लगभग ५० वर्ष के कॉन्ग्रेसी शासन पर दोष लगाकर भाजपा को बचाना श्रेयस्कर नहीं. दरअसल आज़ादी के बाद ही हम भटक गये. जिस देश की समृद्धता कृषि पर थी, उस देश के किसान, मजूर, शिल्पी, कारीगर और खेतिहर उद्योगों से जुड़े जाति - जजमानी कर्म - श्रम व्यवस्था को दरकिनार कर नेहरू ने सीमेंट लोहे का जंगल खड़ा कर दिया. उद्योगों का महत्व कम नहीं पर प्रथमतः कृषि को बढ़ावा देना था. आज भी यदि १० वर्ष खेती पर ही हम ध्यान दें, तो समृद्धता आ सकती है. भाई पंकज मिश्र का पत्र ! उनकी मूलभावना जिस जन के लिए है, वह गांवों में बसता है या शहरी झोपड़-पट्टियों में ! आपने मिश्र जी का पत्र छापा है यह स्वस्थ संपादन की पहचान है.

❖ देवेंद्र कुमार पाठक
प्रेमनगर, खिरहनी (दक्षिण),
साइंस-कॉलेज डाकघर, कटनी-४८३५०१.

❀ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर ०४ अंक मिला. 'कुछ कही कुछ अनकही' में व्यक्त आपकी पीड़ा स्वाभाविक है. इसमें कोई संदेह नहीं है कि देश में आज जो अराजकता की स्थिति है, उसकी नींव आज़ादी के बाद सत्ता में आयी पार्टी ने ही डाली थी. अपने स्वार्थ और अहम् की तुष्टि के लिए आपात स्थिति भी लगायी. मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप तो पहले भी लगते ही रहे. पर प्रधानमंत्री के ऊपर हर तरह के आरोप भी इसी पार्टी की सरकार के समय लगे. नेताओं और नौकरशाहों का कॉकस भी इन्हीं की देन है. पचास वर्ष का कूड़ा कोई छः सात वर्ष में साफ़ नहीं कर सकता था. जनवाद का अर्थ है कि मज़दूरों और ग़रीब हित की बात तो ज़ोर-शोर से उठाओ पर मौक़ा मिले तो कुछ ले-देकर अलग हो जाओ और संघर्षशील लोगों को भूखे मरने के लिए भगवान के भरोसे छोड़ दो. आज देश में हज़ारों सरकारी- ग़ैरसरकारी कारख़ाने जो बंद हो गये हैं, इन्हीं जनवादियों की देन है. ये लोग समस्या तो उठा सकते हैं पर समाधान निकालने के नाम पर मुंह मोड़ने वाले लोग हैं. सत्ता का सुख उठाना चाहते हैं, लेकिन सत्ता में भागीदारी करके समस्या का हल नहीं निकाल सकते. कारण स्पष्ट है, इनकी सोच भारतीय नहीं आयातित जो है. मेरी तो यह राय है कि हमारे कुटीर उद्योगों को नष्ट करने में इन्हीं जनवादियों का बहुत बड़ा हाथ है. बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए रास्ता इन्हीं लोगों ने बनाया फिर भी ये जो कहें वह सब सही है और आप जो कहें तो आप फासिस्ट हो गये. अंत में यही कहूंगा आप गतिशील हैं, यह देख अच्छा लगता है.

❖ राजेंद्र परदेसी
बी-१११८, इंदिरा नगर, लखनऊ-२२६ ०१६.

(कुछ और प्रतिक्रियाओं के लिए कृपया पृष्ठ ५१ देखें)

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक के साथ ''कथाबिंब'' प्रकाशन के २५ वर्ष पूरे हुए. इसे छोटा-मोटा कीर्तिमान मान लें तो आत्मश्लाघा नहीं होगी. यहां तक पहुंचने का मार्ग सुगम तो नहीं ही था. नौकरी - अनुसंधान कार्य, पढ़ाई, बढ़ते परिवार की ज़िम्मेदारियां और इन सबके साथ पत्रिका प्रकाशन या पत्रकारिता का कोई ख़ास अनुभव न होना ! बिना गहराई की थाह लिये यदि कोई पानी में कूद पड़े और हाथ-पैर मारने लगे तो कुछ तैरना आ ही जाता है. कमोबेश सालों तक इसी तरह की स्थिति रही है. अच्छी तरह तैरना अभी भी नहीं आया है, किंतु पानी की थाह का अनुमान अवश्य हो गया है. आज भी हर अंक एक अग्निपरीक्षा, एक चुनौती जैसा साबित होता है.

''कथाबिंब'' का उद्देश्य नये रचनाकारों को खेमेबाज़ी से अलग एक स्वस्थ मंच प्रदान करना रहा है. कुछ समय अवश्य लगा किंतु धीरे-धीरे अनेक लोग इस अभियान से जुड़ते चले गये. ''कथाबिंब'' के माध्यम से कुछ लेखक बहुत नज़दीकी मित्र बने - इनमें से श्री सुनील कौशिश, डॉ. कृष्ण कमलेश, श्री नीतीश्वर शर्मा 'नीरज', श्रीकांत प्रसाद सिंह ... आदि, हमारे बीच अब नहीं हैं. इस पड़ाव पर इनका योगदान भी रेखांकित करना बहुत ज़रूरी है. सुधी पाठकों और सुहृदय लेखकों की पूंजी ही हमारी धरोहर है. ''कथाबिंब'' ने हिंदी साहित्य-जगत में आज जो भी पहचान बनाई है वह इन्हीं सबके योगदान के कारण है. हर अंक को लेकर हमारा प्रयास मात्र इतना होता है कि किस तरह कम से कम पृष्ठों में अधिक सारगर्भित सामग्री परोसी जाये जो ज़्यादा से ज़्यादा सामान्य पाठकों की साहित्यिक क्षुधा की पूर्ति कर सके.

●

इस अंक की कहानियों की कुछ बानगी ... पहली कहानी 'बिरादरी' (डॉ. देवेंद्र सिंह) एक ऐसे युवक की कहानी है जो आज भी सच्चे और सीधे रास्ते पर चलना चाहता है. उसके अनुसार, 'आज भी ईमानदार लोगों की एक बिरादरी है जो मानवता को सबसे बड़ा धर्म समझते हैं, अगर सभी बेईमान हो जायेंगे तो समाज का क्या होगा ?' अगली कहानी आत्महंता (डॉ. सोहन शर्मा) विचित्र सोच की कहानी है - एक कम आत्मविश्वासी लेकिन महत्वाकांक्षी व्यक्ति हमेशा यह सोचता रहता है कि कहीं दूसरे लोग उससे अधिक सुखी तो नहीं ! और इस तरह वह किश्तों में, तिल तिलकर आत्महत्या करता रहता है. सैली बलजीत की कहानी 'चक्रव्यूह' सरकारी तंत्र की कार्यप्रणाली पर एक इंगित है. सरकारी तंत्र में छोटे से बड़ा कोई भी दायित्व लेने को तैयार नहीं होता. हर कोई फौरन गेंद दूसरे के पाले में डालने की कोशिश करता है. सुश्री नरेंद्र कौर छाबड़ा की कहानी 'खेल' खेल-खेल में बहुत कुछ कह जाती है. बच्चे कभी-कभी ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि उनका जबाव देना मुश्किल हो जाता है और फिर कभी-कभी तो अजीबो ग़रीब संकट उपस्थित हो जाता है ! सुश्री संगीता आनंद की कहानी 'एक थी सांवली' नारी की दुर्दशा का सच्चा बयान है. नारी-विमर्श और नारी सशक्तिकरण सेमिनारों में बहस के मुद्दे तो हो सकते हैं किंतु ज़मीनी स्थिति में किंचित भी अंतर नहीं आया है.

●

मुंबई की 'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' के सौजन्य से पिछले कुछ वर्षों से पुस्तकों का प्रकाशन किया जा रहा है. शहर के जाने-माने उद्योगपति व समाजसेवी श्री महावीरप्रसाद घ. सराफ ने अपने पिता श्री घनश्याम सराफ की पावन स्मृति में वर्ष १९६१ में 'घनश्यामदास सराफ ट्रस्ट' की स्थापना की. अपने जनकल्याणकारी कार्यों को सुनिश्चित आधार और अनवरत गति प्रदान करने के लिए उन्होंने ४ और ट्रस्ट स्थापित कीं. आज महावीरप्रसाद जी की अध्यक्षता और देखरेख में 'घनश्यामदास सराफ ट्रस्ट', 'दुर्गादेवी सराफ ट्रस्ट', 'महावीरप्रसाद सराफ ट्रस्ट', 'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' व 'सुपरटेक्स फाउन्डेशन' समाजसेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं. सराफ ट्रस्टों की सेवाएं बहुमुखी हैं, यहां सबको गिनाना समीचीन नहीं है. मुंबई में अनेक स्थलों पर बैठने के लिए सीमेंट की आरामदायक बेंचें जगह-जगह दिखाई पड़ती हैं - पार्क, समुद्र तट के किनारे, रेल्वे प्लेटफॉर्म, अस्पताल आदि. इन बेंचों की संख्या बढ़ते-बढ़ते आज १३,००० से अधिक पहुंच गयी है.

'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' के अनुदान-सहयोग से अब तक हिंदी, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं में करीब १५० पुस्तकें - इसमें ज़्यादातर हिंदी की पुस्तकें ही हैं - प्रकाशित हो चुकी हैं. कहना न होगा कि यह अपने आप में एक महान कार्य है. लेकिन कतिपय पुस्तकों को छोड़ दें तो अधिकांश पुस्तकों का स्तर बहुत ही सामान्य होता है. इसके साथ यह भी कहना होगा कि यदि इन रचनाकारों को यह प्रकाशन-सहयोग नहीं मिलता तो संभव है वे कभी भी प्रकाश में नहीं आते.

●

इस अंक के अंतिम पृष्ठ पर वर्ष २००४ के 'कथाबिंब कहानी पुरस्कार' के लिए अभिमत-पत्र छपा है. पाठकों से एक बार फिर अनुरोध है कि अधिक से अधिक संख्या में 'वोटिंग' में भाग लें. आप अपना अभिमत पोस्टकार्ड पर लिखकर भी भेज सकते हैं. यदि चारों अंकों में से कोई अंक आपके पास नहीं है तो कृपया हमें लिखें.

अरविंद

कहानी

बिरादरी

वह गांव से आया था, तब बछड़े जैसा सरल व निश्छल था. मामा का एक मातहत उसको लाया था. उसकी उम्र कोई चौदह साल रही होगी. वह डोरी वाला हाफ पेंट और पॉपलीन की मुड़ी-तुड़ी हाफ कमीज़ पहने हुए था. सुनील जब कॉलेज से लौटा, वह बरामदे पर मूड़ी गोते चुकु-मुकु बैठा था और मामी सामने खड़ी थी.

'भूख लगी है ?' मामी ने टेस स्वर में पूछा.

वह कुछ नहीं बोला.

'बोलो न, खाओगे ? मुंह में बोली नहीं है ?' मामी झनक उठी.

उसने एक बार आंखें उठाकर मामी को देखा और फिर मूड़ी गोत ली. उसकी आंखों में सहमी हुई कातरता थी.

'दीजिए न, पूछती क्या हैं !' सुनील मामी से बोला, 'गांव से भोर में ही चला होगा, भूख लगी नहीं होगी ?'

'तो बोले न कि भूख लगी है. ई बौका बना क्यों बैठा है !'

'अभी नया-नया आया है मामी ! लजाता है.'

'लजाता है कि मौगी है !' कहकर मामी रसोई में चली गयी.

'क्या नाम है तुम्हारा बाबू ?' सुनील ने स्नेह से पूछा.

'राम पदारथ सहनी.'

'घर कहां है ?'

'महुवा डोभ !'

'वहां गांव में क्या करते थे ?'

'पढ़ते थे.'

'ऐ, पढ़ते थे ! सुनील चौंका, 'किस क्लास में ?'

'अठमा में.'

'फिर छोड़ क्यों दी पढ़ाई ?'

'बाबू बोले, हम नहीं पढ़ा सकेंगे. पढ़ाई छोड़ाकर भेज दिये?'

'अच्छा कोई बात नहीं, यहीं पढ़ाई भी करना !' सुनील भलमनसाहत में बोल गया.

'हां, यहां आया है पढ़ाई करने !' मामी रसोई से ही तमककर बोली, 'और काम सब तुम करोगे. एक ठो काम अहरा देते हैं तो मुंह फूल जाता है. कहते नहीं हैं, 'अपने लॅल, साग तोड़े चॅल! खुद तो यहां पर पोसौनी लगकर पढ़ रहे हो, ऊपर से अब इसको भी पढ़ाओगे. अनकर चीज़-बीत पर दानी राजा बनना बड़ा आसान है....'

मामी की बात सुनील के मर्म पर पत्थर की तरह पड़ी. उसके मां-बाप गरीब थे. गांव में स्कूल था, सो मैट्रिक तक तो पढ़ा दिया किसी तरह. मगर कॉलेज का ख़र्चा उठाने का बूता उनका नहीं था. बाबू तो आगे पढ़ाने के पक्ष में भी नहीं थे. कहते थे, कुछ काम-धाम करो. मगर वह पढ़ना चाहता था. सुनील अपने स्कूल में सबसे अधिक अंक लेकर पास हुआ था. उसने रो-धोकर मां को मना लिया था. मां उसको लेकर मामा के यहां आयी थी. बहुत रोयी-गिड़गिड़ायी थी. वह प्रसंग सुनील की चेतना में उम्र भर के लिए छप गया है. मामी तो राज़ी भी न थी. मगर मामा को मां ने रो-गाकर मना लिया था.

❋ डॉ. देवेंद्र सिंह ❋

राम पदारथ ने झटके से आंख उठाकर सुनील को देखा. सुनील की आंखों में लोर छलक आया था. वह मुड़ा और वहां से चल दिया.

मामी ने राम पदारथ के आगे अलमूनियम की थाली धर दी.

'खा लो और उधर पीछे तरफ़ जो खपड़ा वाला घर है', मामी बोली, 'उसकी पछियारी कोठरी में सुनीलबा रहता है, वही लड़का जो अभी गया. उसमें एक चौकी खाली है. उसी पर तुम सोना. वहीं ले जाकर अपना झोला-कपड़ा सब रख दो.'

राम पदारथ खाना खाकर पीछे तरफ़ गया. बेआहट कोठरी में घुसा, देखा, सुनील दीवाल तरफ़ मुंह करके पड़ा था. समझ गया कि वह रो रहा है. उसका हृदय भर आया. उसी के लिए न बेचारे को बात-बोली सुननी पड़ी, उसने सोचा और ख़ाली चौकी पर बैठ गया. उस घटना ने अनायास ही उसका तार सुनील के साथ जोड़ दिया.

कुछ देर के बाद सुनील पलटा. सामने चौकी पर राम पदारथ बैठा था. दोनों की आंखें मिलीं, सुनील मुस्कुराया. बारिश के बाद जैसे निर्मल धूप. राम पदारथ भी मुस्कुराया.

'खा लिया ?' सुनील ने पूछा.

'हां !' राम पदारथ बोला.

फिर चुप्पी छा गयी.

❑

राम पदारथ का पिक अप बुहत अच्छा था. एक काम उसको दो बार बताना न पड़ता. झाड़ू-पोछा, बरतन-बासन से लेकर भात-भानस और गाय को खिलाने, दुहने-गाड़ने तक के सारे काम उसने बेहिचक उठा लिये. वह खूब भोर में उठता और देर रात तक जगा रहता. मगर एक पल को भी उसका मुख मलीन न होता.

उसको पढ़ने का बड़ा हौंस था. दोपहर में उसको कुछ देर की फ़ुरसत मिलती. उस ख़ाली समय में सुनील की कोई मैगज़ीन लेकर पढ़ता रहता. बीच में एक बार दो दिन के लिए घर गया तो वहां से अपनी किताब-कॉपियां भी साथ ले आया.

'सुनील बाबू !' एक दिन वह सुनील से बोला, 'इस बार जो घर गये थे न, तो वहां पर हेडमास्टर साहब से भेंट हुई ! वे बोले....'

'सुनो पदारथ', सुनील ने उसको बीच में ही टोक दिया, 'पहले तुम अपना संबोधन सुधारो, तब हम तुम्हारी बात सुनेंगे.'

'क्या हुआ !'

'हम तुम्हारे 'बाबू' नहीं, भाई हो सकते हैं या संगी !' सुनील के स्वर में परिहास था, 'बाबू बनने की अभी हमारी उम्र कहां हुई है !'

'आप हमारे भाई या संगी कैसे हो सकते हैं सुनील बाबू?'

'फिर बाबू !' सुनील ने तरेरा, 'हां, क्यों नहीं हो सकते हैं हम तुम्हारे भाई या संगी ?'

'आप ऊंची जात के हैं, मालिक हैं, और हम नीच जात के....'

'ठीक ! तुम नीच यानी छोटी जाति के हो. इस घर के नौकर हो ! और हम ऊंची जात के हैं. मालिक हैं. तब फिर हम दोनों एक कमरे में साथ-साथ कैसे रहते हैं ?'

राम पदारथ चुप.

'कुछ समझे ?' सुनील ने ऐसे पूछा जैसे रंग में हो, 'देखो पदारथ, हम ऊंची जात में जनमे ज़रूर हैं, मगर हमारी और मामा की जात एक नहीं है. होती तो वे हमको नौकर के कमरे में, नौकर के साथ, नहीं रखते....'

'आपकी बात हमारी समझ में नहीं आती है.'

'लेकिन समझना ज़रूरी है. इससे तुमको सच देखने की दृष्टि मिलेगी. हम यदि उनकी जात के होते तो उनके साथ पक्के मकान में नहीं रहते ? उसमें बहुत कमरे हैं, नहीं हैं ?'

'हां !' राम पदारथ मूड़ी डोलाते हुए बोला, जैसे बात समझ रहा हो.

'इसको ऐसे भी समझ सकते हो,' सुनील आगे बोला, 'यदि हम भी अमीर मां-बाप की औलाद होते, तो मामा हमको बराबर का मान देते और अपने साथ रखते. निचोड़ क्या निकला ? यही

'कथाबिंब' के हितैषी एवं नियमित कथाकार

कि वे हमारे मामा हैं ज़रूर, मगर हमारी-उनकी जात एक नहीं है. और तुम चाहे जिस भी जात के होओ, हम दोनों की बिरादरी एक है. हां, अब तुम वह हेडमास्टर साहब वाली बात बताओ ?'

'मगर वह संबोधन ? वह तो नहीं फरियाया !' राम पदारथ विहंसा.

'तुम हमको सुनील दा बोलो ! वैसे भी हम तुमसे बड़े हैं.'

'हेडमास्टर साहब बोले न सुनील बाबू... नही, सुनील दा!' वह हंस पड़ा, 'कि तुम पढ़ाई जारी रखो. हम प्राइवेट से तुम्हारा फॉर्म भरवा देंगे.'

'सही तो बोले ! तुम समय निकालकर पढ़ाई भी करो.

❑

मामी बीच-बीच में, किसी भी समय, पिछवाड़े तरफ़ औचक निरीक्षण हेतु आ धमकती. वैसे में जो वह राम पदारथ को पढ़ता या और सुनील को पढ़ाते पकड़ लेती तो अगिया-बैताल हो जाती. फिर तो वह कोई न कोई बहाना बनाकर सुनील की खूब लानत-मलामत करती. मामा से भी शिकायत लगाती कि सुनील राम पदारथ को बिगाड़े देता है.

कई बार तो सुनील घोर अचरज में पड़ जाता कि वह जब भी पदारथ को कुछ बताने लगता, पता नहीं मामी को कैसे मालूम चल जाता, वह दम दाखिल हो जाती. और वह सुनील की एक गत बाक़ी नहीं छोड़ती.

'हम को तो लगता है पदारथ,' वैसी ही एक दुर्गत के बाद उसने राम पदारथ से कहा, 'मामी के पास ज़रूर छठी सेंस भी है.'

'छठी सेंस क्या ?'

'मनुष्य की पांच ज्ञान-इंद्रियां हैं. उनसे जुड़ी पांच सेंस हैं. कहते हैं, कुछ जीवों में छठी इंद्रिय अथच छठी सेंस भी होती है. उससे वे कुछ सूक्ष्म तथा दूरागत होनियों के भी आभास-पा लेते हैं. मामी के पास भी वह सेंस है.' कहकर वह हंसा.

'अब हम ऐसा करते हैं सुनील दा, दिन में पढ़ना ही बंद कर देते हैं. खूब रात में और भोर में उठकर पढ़ेंगे.'

'मामी से पार पाना मुश्किल है पदारथ. पढ़ने के लिए तुम लाइट जलाओगे न. लाइट जलती देखकर वे बार-बार आकर हुलकी मारेंगी. और कभी-न-कभी पकड़ ही लेंगी.'

मगर मामी डाल-डाल तो पदारथ पात-पात. सुनील से पैसा मांगकर वह एक कुप्पी ख़रीद लाया. और जब सुनील लाइट ऑफ कर सो जाता, वह कुप्पी जलाकर देर रात तक पढ़ता रहता. फिर भोर में जब गाय लगाने के लिए उठता, तब बत्ती जलाता ही. गाय को लगाकर, पढ़ने लगता. मामी के उठने की आहट पाते ही किताब को छिपा देता.

❑

पहले बाज़ार का सौदा-सुलफ़ सुनील करता था. अब वह काम भी राम पदारथ करने लगा. मामी को सुनील पर विश्वास न था. कहना चाहिए, मामी का उसूल ही था, विश्वास किसी पर भी नहीं. सुनील से वह लेहाज़ के मारे ठीक से हिसाब न ले पाती थी. हालांकि यह आशंका, बल्कि विश्वास बना रहता था कि जाने कितना पैसा बाछता होगा. दलिद्दर जो ठहरा ! घर में रोज़ी-बाट तो है नहीं. .... मामी का एक विश्वास यह भी था कि जो ग़रीब है, वह चोर बेईमान होगा ही.

राम पदारथ को पहले दो-चार बार सुनील के साथ बाज़ार भेजा. फिर अकेले भेजने लगी. वह जब सामान लेकर आता तो एक-एक चीज़ का दाम पूछती. सबको तौलती. (हां, मामी ने घर में लोहे का एक तराज़ू और बाट रख छोड़े थे.) खूब जिरह करती. मगर हाथ कुछ न लगता. अब उसको लगा कि पदारथ सुनील से बेशी घाघ और शातिर है, इसीलिए पकड़ में नहीं आता.

मगर मामी भी तो फिर मामी ही थी. एक दिन उसकी चोरी पकड़ ही ली. फिर तो वह मारे ख़ुशी के झूम उठी. डगरिन से भला कहीं पेट छिपा है. उस दिन राम पदारथ हरी सब्ज़ी में एक किलो रामतरोई भी लाया था. मामी ने जो तौला तो वह आठ सौ ग्राम ही हुई. उसने मान लिया कि रामतरोई तीन पाव ही ली है और एक पाव का पैसा मार लिया.

'भिंडी कितना है रे ?' मामी ने रसोई के भीतर से पूछा.

'एक किलो.' राम पदारथ गाय के पास से बोला.

'तीन पाव लाये हो और कहते हो एक किलो. जोगी के आगे धुरखेल रे !'

'हम एक किलो लाये हैं तो !' राम पदारथ तमक कर बोला.

'एक किलो लाये तो क्या उड़ गया ? कि हम चबा गये? देखो तो !' मामी तराज़ू की डंडी थामे, उसे झुलाती हुई प्रगट हुई, 'यह एक किलो है ?'

राम पदारथ अवाक !

'उल्टा और हमारे ऊपर ही गरजता है. कहते नहीं हैं, चोर बोले चोर से !'

'देखिए, हमको चोर-ऊर मत बनाइए !' राम पदारथ ऐसे फनफनाया जैसे पैर पड़ जाने से सांप, 'हम चोर-चोहार नहीं हैं.'

'तुम चोर नहीं हो तो क्या हम हैं ?' मामी आपा खो बैठी और पलड़े पर पड़ा अधकिलो उठाकर दे मारा. निशाना अचूक बैठा. बाट उसके कपार पर लगा. कपार फूट गया. दर-दर लहू बहने लगा. राम पदारथ की चीख़ निकल गयी. वह कपार पकड़ के बैठ गया.

सुनील कोठरी में था. चीख़ सुनकर दौड़ा आया.

'क्या हुआ मामी ?' उसने पूछा.

'होगा क्या ! उल्टे चोरी भी करता है और पूछते हैं तो हमको ही झूठी बनाता है. हमको आंख दिखाता है !'

'क्या चोरी की इसने ?'

'देखो न, तीन पाव भिंडी लाया है और कहता है एक किलो है.'

'मामी, सब्ज़ी बाज़ार में बहुत लोग कम तौलते ही हैं.'

'हां-हां, तुम तो उसका पक्ष लोगे ही. चोर-चोर मौसेरा भाई!'

सुनील को चोट तो लगी, मगर वह सह गया. उसने राम पदारथ को उठाया. उसको कोठरी में ले गया. उसका घाव धोया. घाव अधिक गहरा नहीं था. उसने साफ़ कपड़े पर डेटॉल डाला और घाव पर दबा दिया. धीरे-धीरे खून आना बंद हो गया.

अब मामी राम पदारथ पर और कड़ी नज़र रखने लगी. वह उसके साथ तब तक मार-पछाड़ करती रही, जब तक वह चोर से पूर्ण साध न बन गया.

पहले हर दूसरे-चौथे दिन मामा के कोरट में मामले की पेशी होती. इससे मामा भी परेशान रहते. वे मामी का स्वभाव जानते थे. मगर बोल न पाते थे. डरते थे, कहीं उनके माथे पर ही न बेल फूटने लगे. पर, पिछले कुछ दिनों से घर में शांति थी. मामा को उस शांति का राज़ समझ में न आता था.

एक दिन मामा से रहा न गया तो पूछ ही बैठे, 'पदारथ का क्या हाल है ? लगता है, अब ठीक से काम करने लगा...'

'ठीक कि ऐसे ही हो गया !' मामी सगर्व बोली, 'ठोक-ठाक के ठीक किया है. अब देखिए कैसे टकुवा लेखा सीधा हो गया है. एकदम गौरी दास. मार के डर से तो भूत भी भागता है. यह तो मनुख जात ही है....'

❑

'सुनील दा !' एक दिन राम पदारथ ने मस्ती भरे अंदाज़ में कहा, 'चलिए, घूमने चलते हैं.'

'घूमने ! कहां रे ?'

'बाज़ार. ...चलिए आज आपको रसमलाई खिलाते हैं.'

'सो क्या तुम्हारी लॉटरी निकली है ?'

'वही समझ लीजिए.'

सुनील कुछ नहीं बोला. अपना काम करता रहा.

'आपको विश्वास नहीं हो रहा है सुनील दा ? हम सच्ची कह रहे हैं, मज़ाक नहीं. चलिए न !'

'अरे तो हम तुम्हारे पैसे से रसमलाई खाने जायेंगे ! बौरा गये हो क्या ?'

'हमारे पैसे से नहीं तो अपने पैसे से तो खाइएगा न ! समझ लीजिए आप ही का पैसा है.'

'हमारा पैसा !'

'आपके मामा-मामी का है तो आप ही का न हुआ ?'

'मतलब ?'

'मतलब क्या !' राम पदारथ पहले हंसा, फिर संजीदा हो गया. देखते-देखते एक दर्द-सा उसकी आंखों में घुलने लगा.

'जब हम चोर न थे सुनील दा, तब मालकिन हमको चोर बूझती और कहती थी. क्या-क्या सतान नहीं सताया, आप तो सब देखबे किये हैं. हम साचे, चोर नहीं हैं तब भी चोर ही समझती हैं, अब हम क्या करें ? क्यों नहीं चोर ही बन जायें ? और हम चोर बन गये. धीरे-धीरे चोर की सब चालाकियां भी आ गयीं. अब देखिए, मालकिन ख़ुश, मालिक ख़ुश और हम भी. अब हाथ में दो ठो पैसा भी रहता है.....'

'मगर इसमें घाटा किसका हुआ ?' सुनील ने बीच में ही पूछ दिया.

'किसी का भी नहीं !'

'नहीं पदारथ, तुम्हारा घाटा हुआ और बहुत बड़ा घाटा हुआ.'

'घाटा ! हमारा ?'

'हां. तुमने अपना चरित्र खो दिया. चरित्र ही मनुष्य का सबसे बड़ा धन होता है.'

'चरित्र और ईमान ग़रीब आदमी के लिए शाप होते हैं सुनील दा !'

'नहीं रे पदारथ, शाप चरित्र और ईमान नहीं, मूल्य-हीन जीवन होता है. पहले तुम्हारे पास मूल्य थे तो तुम्हारा जीवन बहुमूल्य था. अब वह दो कौड़ी का है. धन मनुष्य को संपन्न नहीं, विपन्न बनाता है.....' सुनील चुप हो गया.

राम पदारथ उसके चेहरे पर तेज़ी से बदलते भावों को देख रहा था.

'हमने सोचा था, तुमको भी अपने संगठन के साथ जोड़ेंगे...'

'किस संगठन के साथ ?' राम पदारथ ने कमज़ोर स्वर में पूछा.

'वही जो समाज के बारे में सोचता और करता है. जो मानवता को ही सबसे बड़ा धर्म मानता है. जिसके लिए सब मनुष्य एक जात के हैं. ...सोचो तो पदारथ, यदि सब लोग चोर और बेईमान ही हो जायेंगे तो समाज का, संसार का क्या हाल होगा ?'

राम पदारथ के मुंह में बोली नहीं बची थी.

'हमको दुख है राम पदारथ, आज तुम हमारी बिरादरी से बाहर हो गये !'

'सुनील दा !' राम पदारथ इससे आगे कुछ बोल न सका. उसका मुंह ऐसा हो गया जैसे रो पड़ेगा.

देवगिरि, आदमपुर घाट मोड़,
भागलपुर (बिहार) - ८१२ ००१.

लघुकथा

उसकी व्यथा

नरेंद्र आहूजा 'विवेक'

रामू न चाहते हुए भी शहर के मशहूर वातानुकूलित बाज़ार माल की तरफ बढ़ गया था. चीकट बाल, दाढ़ी, फटे कपड़े, टूटी चप्पल, पिचका कांतिहीन चेहरा. एक मजदूर रामू लगभग रोज़ाना उस शॉपिंग माल के दरवाज़े पर जा पहुंचता था. दरवाज़े पर खड़ा दरबान उसे रोक लेता और कहता 'यहां से जाओ, क्या करने आये हो.' रामू उदास वहीं बाहर बैठ जाता और ख़ाली निग़ाहों से माल की ओर देखता रहता जैसे शून्य में कुछ ढूंढ़ रहा हो.

आज भी दरबान ने उसे रोका लेकिन साथ बैठा कर पूछा 'क्या बात है इस ज़गह से तुम्हारा क्या लगाव है ?' प्रेम के इन दो शब्दों ने रामू के मन का बांध तोड़ कर रख दिया, 'इस ज़गह कभी हम मजदूरों की बस्ती थी और यहीं मेरी झोपड़ी थी. जीवन में कुछ करने की उम्मीद से गांव छोड़कर शहर आया था. फैक्टरी में मजदूरी करके नेता जी के एक दलाल को पैसे देकर इस ज़गह पर झुग्गी डाली थी. अपनी खोली में रहता, मजदूरी करता और बच्चे पालता था. सरकार ने यह शॉपिंग माल बनाने के लिए हमारी मजदूर बस्ती को तोड़ दिया था, मिल मालिकों ने मिल में मंदी के कारण तालाबंदी कर दी थी. मैं इसी बिल्डिंग के ठेकेदार के पास मजदूरी करने लगा था. यहीं पास में खोलियां बनाकर हम रहने लगे थे. यह माल हमारी झुग्गियों के ऊपर बना था. यहां मजदूरी करते समय मुझे लगता जैसे अपनी छाती पर ईंट रखकर यह इमारत बना रहा हूं. माल बन गया, हमें फिर से यहां से भगा दिया गया फिर अगली ज़गह इमारत बनाने के लिए. भाई अपनी झोपड़ी पर ख़ुद अपने हाथों से यह इमारत मैंने बनायी है जिसमें मैं घुस भी नहीं सकता !' रामू अपनी व्यथा दरबान को सुनाकर हल्का हो गया था.

९२२ सेक्टर- २८, फरीदाबाद (हरियाणा)

कहानी

आत्महंता

"चीफ़! बात कुछ बन नहीं रही है, हम जो चाहते हैं...एक नयापन...ताज़गी उसकी गुंजाइश बहुत कम है. वैसे कहानी का बेसिक आइडिया दिलचस्प है." क्रियेटिव हेड कुछ उलझन में था.

"तो ! मुश्किल क्या है ?" चीफ़ ने सिगार सुलगाते हुए उसकी आंखों में झांका, 'कहानी का प्रमुख पात्र मध्यवर्ग का एक मामूली सा आदमी है. लेकिन बहुत ही महत्वाकांक्षी .... गाड़ी ... बंगला... नौकर-चाकर और वो सब कुछ जो रईस लोगों के पास होता है, उसे पा लेने की हवस है. लेकिन इसे ज़िंदगी में यह सब कुछ मिल नहीं पाया. बस इसी कुंठ में यह बिना मतलब ख़ुद को तीस मार ख़ां समझने लगा है, अपने सामने किसी को कुछ समझता ही नहीं."

"तीस मार ख़ां !" चीफ़ ने टोक दिया -"क्या मतलब ! क्या वो किसी सामाजिक आंदोलन में सक्रिय है !... ये जो बात-बात पर धरना-वरना देने वाले समाजसेवी और 'इनवायरमेंटलिस्ट' होते हैं वैसा कुछ ?"

"नहीं ऐसा कुछ नहीं है, बहुत ही सामान्य-सा आदमी है, पर स्वभाव ही कुछ ऐसा बन गया है. हर बात पर बहस, किसी से भी बिना बात के लड़ पड़ना, यह चाहता है कि सारी दुनिया इसके 'फ्रेमवर्क' में ढल जाये."

"उसका 'फ्रेमवर्क' क्या है ?"

"यही तो मुश्किल है, इसके बारे में 'डिटेल्स' भी नहीं हैं कहानी में."

"हूं...फैमली बैक ग्राउंड ?"

"मिडिल क्लॉस से है. कॉलेज के समय से ही समृद्धि की भूख का मारा. कारों में बैठ कॉलेज आने वाले अपने सहपाठियों को देख कर समृद्धि की लालसा और भी बढ़ती गयी. थोड़ा बहुत कहानी लिखने का शौक़ था. कॉलेज की मैगज़ीन में कहानी छप जाती. कभी-कभार स्थानीय अख़बारों के 'लिटरेरी सप्लीमेंट' में एकाध कहानी छप जाती. हज़रत अपने को 'जीनियस' समझने लग गये...लेखक बनेंगे...साहित्य के साथ-साथ 'एकेडेमिक्स' में भी नाम कमायेंगे...पुरस्कार...रॉयल्टी...फॉरेन टूर...पैसा बरसने लगेगा. शोहरत तो होगी ही...ऐसे ही कुछ सपने थे. कॉलेज में इनके साथ पढ़ने वाली एक अमीर बाप की बेटी इस 'जीनियस' पर फ़िदा हो जाती है. यह भी उसमें दिलचस्पी लेने लगा. साल भर प्यार-व्यार चलता रहा. दोनों ने एक साथ एम. ए. किया. ये हज़रत एक कॉलेज में लेक्चरार लग गये. लड़की का रईस बाप एक मामूली से लेक्चरार को अपना दामाद बनाने को राज़ी नहीं था. दोनों ने मां-बाप की इच्छा के विरुद्ध शादी कर ली..."

"यार ये तो राजेंद्रकुमार के ज़माने की कोई घिसीपिटी प्रेम कहानी लगती है." चीफ़ ने टोक दिया.

".... हां शुरूआत तो कुछ ऐसी ही है, पर आगे दो-तीन ट्विस्ट अच्छे हैं."

डॉ. सोहन शर्मा

"चलो, सुना डालो वो भी." चीफ़ ने आधे मन से कहा.

"शादी के बाद लड़की के लिए मां-बाप के घर के दरवाज़े बंद हो गये. अमीर बाप की सुख-सुविधाओं में पली बेटी... एक लेक्चरर की तनख़्वाह तो ठीक से गुज़ारे के लिए भी काफ़ी नहीं होती. शानदार पोशाकें, पार्टियां, होटलबाज़ी और कार... कहां से आता ये सब !" प्यार का ख़ुमार उतर गया कुछ ही दिनों में शुरू हो गयी खिच-खिच... क्लेश बढ़ता गया. इसी बीच एक एड एजेंसी के ऑफर पर लड़की मॉडलिंग करने लगती है... एड एजेंसी के बॉस के साथ उसका चक्कर शुरू हो जाता है. पतिदेव यह सब देख कर कुढ़ते रहते हैं. कहानी-वहानी लिखना... साहित्य चर्चा सब छूट गया. इसी बीच एक बेटा भी हो जाता है. बेटे को दूसरे शहर में हॉस्टल में दाखिल करा देता है. कम से कम बेटे के सामने तो दिन रात की फ़ज़ीहत न हो... दौलत कैसे कमाई जाये !... कॉलेज में एडमिशन के लिए आने वालों से डोनेशन के नाम पर रुपये बटोरता है... पर इससे अमीर बनने का सपना तो पूरा होने से रहा... पत्नी को दूसरों के साथ गुलछर्रे उड़ाते देखता तो आग लग जाती. रोज़-रोज़ का क्लेश... टोकता तो पत्नी जलीकटी सुनाती... निकम्मेपन का ताना देती... हैसियत नहीं थी तो पहले ही सोचना था ! तुम्हारे लिए मां-बाप छोड़ दिये... अब क्या अपनी इच्छाओं का भी गला घोंट दूं... यही सब चलता रहा. दौलत के चक्कर में हज़रत को जुए की लत लग गयी. जो कुछ कमाता जुए में उड़ जाता... घर में पत्नी की डांट-डपट बाहर लोगों की व्यंग्य भरी नज़रें... स्वभाव तो बिगड़ना ही था. ग़ुस्सा नाक पर रहने लगा. उसे लगने लगा कि तमाम लोग निकम्मे हैं, स्वार्थी हैं... अपने बड़प्पन का एक आभामंडल बना लिया इसने अपने आसपास और दूसरों को दो कौड़ी का समझ कर उलझता रहता लोगों से. ऐसे ही चलता रहता है...."

"हूं... याने अपनी सामर्थ्य न पहचान कर ख़ुशफ़हमियां पाल लेने वाला एक औसत दर्जे का महत्वाकांक्षी आदमी.." चीफ़ के चेहरे पर गंभीरता थी... यह सब तो ठीक है पर महत्वपूर्ण नहीं है. महत्वपूर्ण है इस आदमी के फ्रेमवर्क को पकड़ना. वो जो तीस मार ख़ां वाली बात कह रहे थे न तुम ! उसके लड़ाकूपन की बात, उसे पकड़ने की कोशिश करो. उसी से हमें कोई ऐसा सूत्र मिलेगा जो कहानी को थोड़ा 'डिफरेंट' बना सके. मीडिया चाहता है कि कहानी कुछ 'डिफरेंट हो." चीफ़ ने बुझा हुआ सिगार सामने रखी एश ट्रे में रखते हुए क्रियेटिव हेड की ओर देखा.

"डिफरेंट क्या है चीफ़ ! चैनल के कर्ता-धर्ता खुद भी नहीं जानते कि अलग तरह की कहानी कैसी हो सकती है. एक कहानी उठा लेंगे - 'आने नहीं दूंगा' दूसरा उसे थोड़ा इधर-उधर करके बना देगा - 'जाने नहीं दूंगा.' फिर तीसरा कर देगा - 'आने-जाने नहीं दूंगा.' बस हो गया डिफरेंट. कमबख़्त घाणी के बैल की तरह घूम रहे हैं एक ही जगह." क्रियेटिव हेड के स्वर में अजीब सी तल्ख़ी थी.

"देखो जीनियस ! हमें इन बातों में उलझने की ज़रूरत नहीं है. डिफरेंट का सीधा सा मतलब यह है कि कहानी में बात भले ही अलग-सी न हो पर उसे प्रस्तुत करने का ढंग थोड़ा अलग होना चाहिए. ए वेरी डिफरेंट ट्रीटमेंट ! तभी तो उसकी कमर्शियल वैल्यू होगी. समझ रहे हो न मेरी बात !"

"समझ रहा हूं चीफ़ ! लेकिन कोई तो लॉजिक होनी चाहिए ना !"

"माई डीयर, टी.वी. सीरियल में लॉजिक ढूंढोगे तो भूखे मर जाओगे. लॉजिक क्या है ! जो बिक जाये वही लॉजिक है... खैर छोड़ो यह बहस. इस तीस मार ख़ां के मामले में चैनल वालों को कहानी का बेसिक आइडिया पसंद है... महत्वाकांक्षाएं पूरी न होने की पीड़ा.... इसी के आसपास कहानी का छोटा सा ढांचा बुना है राइटर ने. हमें इसी में थोड़ा फेरबदल करके इसे कुछ अलग ढंग से प्रस्तुत कर देना है. वी ऑर वर्किंग ऑन ए प्रोजेक्ट. और प्रोजेक्ट हमारे 'विज़न क्रियेशन' का है. इसे तो बेहतरीन होना ही चाहिए." चीफ़ ने एश ट्रे में रखा सिगार सुलगा कर एक गहरा कश लेते हुए क्रियेटिव हेड की ओर देखा. "जी", क्रियेटिव ने गरदन को हल्की सी हरकत दी.

कुछ क्षणों तक कमरे में गहरी चुप्पी छायी रही. "अच्छा ये बताओ, कहानी में उस आदमी की महत्वाकांक्षाओं को लेकर कोई टिप्पणी की है राइटर ने ?" चीफ़ ने कुछ देर बाद चुप्पी तोड़ी.

"जी !' एक-दो टिप्पणियां हैं. मैंने अलग से नोटिंग की हैं उन पर."

'बताओ'

'संजय ! डिस्पले करो !" क्रियेटिव हेड ने पास की कुर्सी पर बैठे युवक को संकेत किया.

१ जनवरी १९४२;
उदयपुर, राजस्थान

लेखन : बहुचर्चित उपन्यास 'मीणाघाटी' तथा चिंतन परक ग्रंथ 'भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष' एवं 'साम्राज्यवाद वेनक़ाब' सहित कविता-संग्रह, कहानी संग्रह और राजनीतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक विमर्श पर केंद्रित १५ पुस्तकें प्रकाशित. नक्सलवादी आंदोलन पर केंद्रित हाल ही में प्रकाशित उपन्यास-'समरवंशी' इन दिनों विशेष रूप से चर्चा में है.

*प्रकाशन : मुंबई से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका **'सही समझ'** का संपादन.*

विशेष : पिछले दिनों 'भारत का आर्थिक इतिहास' खंड-१ पूरा किया है. आजकल महानगर मुंबई पर केंद्रित एक उपन्यास लिख रहे हैं.

संजय ने उठ कर खिड़कियों पर पर्दे खींचे और पास रखे 'लैपटॉप' को आगे लाते हुए सामने की स्क्रीन ऑन कर दी. स्क्रीन पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखीं कुछ पंक्तियां उभरीं.

"महत्वाकांक्षी व्यक्ति का अंहकार दूसरे लोगों के अंहकार की तुलना में खड़ा हो जाता है. महत्वाकांक्षी व्यक्ति यह नहीं सोचता कि उसे जो कुछ भी उपलब्ध है उसमें सुख है या नहीं, वह हमेशा यह सोचता है कि कहीं दूसरे लोग उससे अधिक सुखी तो नहीं हैं."

"गुड ! वैरी गुड ! लेखक की यही टिप्पणी इस आदमी के चरित्र को समझने का मूल सूत्र है... आई मीन उसकी महत्वाकांक्षाओं को पकड़ने का 'रोड मैप'.... उलझन की तो कोई बात ही नहीं है जीनियस. लेखक ने एक अर्थपूर्ण संकेत कर दिया है. ये जो लेखक होते हैं न, वे उतने डफर नहीं होते जितना हम उन्हें समझते हैं. ये ठीक है कि लेखक विज़ुअल मीडिया के ग्रामर को जल्दी पकड़ नहीं पाते मगर उनमें किसी कैरेक्टर को गहराई से पकड़ने की सूझबूझ होती है. अब आप इस टिप्पणी को थोड़ा विस्तार दें... इनलॉर्ज करें... कैसे करेंगे ?"

"चीफ़ ! मैं कुछ कहूं.?" क्रियेटिव हेड के सामने बैठे अधेड़-से टेक्निकल एडवाइजर ने कहा.

"कहिए !" चीफ़ ने उसके चेहरे पर नज़रें गड़ा दीं. "महत्वाकांक्षी व्यक्ति का अंहकार दूसरे लोगों के अंहकार की तुलना में खड़ा हो जाता है." इस बात को थोड़ा आगे बढ़ायें. इस आदमी के आसपास मध्यवर्ग के कुछ लोग जिस ठाठ-बाट से जीवन बिता रहे हैं उसे दिखाया जाये... एक कम्पेरिजन... उस तरह की आलीशान ज़िदगी की ललक... और जो उसे नहीं मिल पाया है, उसकी कुंठा... इस कुंठा से उपजा तनाव जिसने इसे लड़ाकू और हर चीज़ के प्रति क्रिटिकल बना दिया है... अपने सामने किसी को कुछ न समझने का नज़रिया... यही उसका फ्रेमवर्क है.

"गुड आइडिया ! अतृप्त लालसाओं की मारी एक बेचैन आत्मा !" चीफ़ की आंखें चमक उठीं. - "यार मांजरेकर, मैं तो सोचता था कि ये टेक्निकल किस्म के लोग 'विजुअल' और 'स्लाइड्स' बनाने में ही माहिर होते हैं... बट यू ऑर ए क्रियेटिव ब्रेन ऑल्सो !" होंगे क्यों नहीं, इतने बरसों से 'विज़न-क्रियेशन' के साथ हैं. वो कहा जाता है न ! मंडन मिश्र के घर के तोते भी संस्कृत बोलते थे." क्रियेटिव हेड ने चापलूसी की मुद्रा में चीफ़ की ओर देखा.

"हां, तो मांजरेकर के इस आइडिया को आगे बढ़ायें..." चीफ़ ने क्रियेटिव हेड की बात पर ध्यान नहीं दिया - "कम्पेरिज़न! ... लेकिन एक बात पर ध्यान दो... पराये लोगों के ठठ-बाट आदमी को अधिक दुःखी नहीं करते. उसके अपने नाते-रिश्तेदारों का वैभव उसे अधिक दुःख देता है... दुःख के साथ-साथ एक हीन भावना भी आ जाती है.. "

"दो भाई हों इस आदमी के... भले ही चचेरे-ममेरे हों. एक वकील हो, दूसरा शेयर-ब्रोकर. उनके पास कार, बंगला ... शानदार फर्नीचर... और वो सब कुछ है जिसकी लालसा इसे है." क्रियेटिव हेड ने संकेत किया.

"... नहीं, किसी संपन्न औरत को लाओ. रिश्तेदार होनी चाहिए इसकी. पुरुष किसी पुरुष के वैभव से उतना दुःखी नहीं होता जितना किसी औरत के वैभव से होता है... और वो औरत अगर रिश्तेदार हो तो फ्रस्ट्रेशन की हाइट ही समझो... सोचो ज़रा... यार एक सगी बहन ही ले लो न ! एक भला सा रईस नौजवान उससे प्यार करने लगता है... लेकिन इनका प्यार कैसे होगा !" चीफ़ रुक कर कुछ सोचने लगा. ...फिर क्रियेटिव हेड की आंखों में देखता हुआ अचानक बोल उठा- "ऐसा करो, उस नौजवान का कार एक्सिडेंट करवा दो. लड़की याने इस तीस मार ख़ां की बहन ट्यूशन से लौट रही है. वो इसे घायल अवस्था में सड़क पर पड़ा देखती है और उसे अस्पताल पहुंचाती है ...बस हो गया प्यार... फिर शादी. अब उसका वैभव दिखाओ... शानदार बंगला ....तीन-चार कारें... नौकरों की पल्टन... "

"और ढेर सारे हीरे-मोतियों के गहने." क्रियेटिव हेड ने जोड़ा.

'ऑफ कोर्स ढेर सारे गहने, लेकिन हीरे-मोतियों के नहीं. सोने के. स्वर्ण आभूषणों के सेट! सोना... गोल्ड माई डियर गोल्ड. हीरे मोतियों से कहीं अधिक ललक सोने के लिए होती है औरतों में. खास कर मिडिल क्लॉस की औरतों की तो जान बसती है सोने में. ...फिर एक-दो पारिवारिक समारोह रखो... छोटी बहन सर से पांव तक सोने से लदी हो... एक सीन में ननद अपनी भाभी को अपने गहनों के दर्जनों सेट दिखा रही हो... भाभी के हावभाव... यह सब कुछ न होने की पीड़ा, अतृप्ति और असंतोष... कुंठा... ये तुम्हारा तीस मार ख़ां पत्नी के तानों से छलनी हो जाता है. इसे तुम जितना चाहे आगे बढ़ा सकते हो. एक रात बिस्तर पर ही झगड़ा करवा दो दोनों में. फ्रस्टेशन की पराकाष्ठा! ...दौलत कमाने के लिए बहुत सारे क्षेत्रों में हाथपांव मारता है, पर बात कुछ बनती नहीं."

"बात बन भी नहीं सकती चीफ़ ! महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए आदमी अपनी सामर्थ्य और ऊर्जा ऐसे कामों में लगाता है जो उसके स्वभाव के प्रतिकूल होते हैं. इससे उसके मन में अपराध-बोध पैदा होता है. यह अपराध-बोध एक गहरे तनाव को जन्म देता है.... " क्रियेटिव हेड ने चीफ़ की बात आगे बढ़ायी.

"बहुत सही जा रहे हो, लेकिन इतनी भारी-भरकम हिंदी नहीं चलेगी. आम आदमी की भाषा में बात करनी है. हम 'विजुअल' पर जा रहे हैं जीनियस."

"एपिसोडिक-राइटिंग के समय इसका ध्यान रखेंगे."

"अब क्लाइमैक्स पर आओ. संजय ! वो दूसरा पैराग्राफ फिर से डिस्पले करो !"

संजय ने लैपटॉप संभाला. स्क्रीन पर अगली पंक्तियां थीं - "महत्वाकांक्षाएं पूरी न होने पर असंतोष पैदा होता है, जो निराशा को जन्म देता है. निराशा अकर्मण्यता की ओर ले जाती है. अकर्मण्यता व्यक्तित्व के विकास को अवरुद्ध कर उसे एक निष्क्रिय प्राणी में बदल देती है."

चीफ़ कुछ देर सोचता रहा. फिर सधे हुए स्वर में कहा - "लेखक की इस टिप्पणी को क्लाइमैक्स का आधार बनाओ ! ...लेकिन वो निष्क्रियता वाली बात कुछ जमती नहीं... निराशा, ...घोर निराशा जो बढ़ कर चिंता में बदलती है और चिंता बढ़ते-बढ़ते आदमी के व्यक्तित्व को तोड़ कर रख देती है.... "

"आदमी पागल भी हो सकता है चीफ़ !" ...मांजरेकर ने कहा.

"बिल्कुल हो सकता है. कुंठा, निराशा, चिंता और तनाव की एक लंबी प्रक्रिया... एक दो मार्मिक प्रसंग और जोड़ दो. जैसे तगड़ी सिफ़ारिश लगाने के बाद भी लंदन में होने वाले सेमिनार में इसकी जगह इसके जूनियर को शामिल कर लिया जाता है... एक फिल्मी-लेखक जिसके लिए ये कभी-कभी 'घोस्ट राइटिंग' करता रहा है, इसे अपमानित करके घर से निकाल देता है... ऐसे

ही कुछ प्रसंग... फिर ये जनाब तीस मार ख़ां अपने कुछ मीडियोकर लेखक दोस्तों के साथ दारू पीकर अपना दुखड़ा रोते हैं. '...अब वो देखो... साला सान्याल ! जूनियर होकर भी लंदन चला गया... लौट कर साल भर में तिकड़म लगा कर प्रिंसिपल बन कर हमारे सर पर बैठ जायेगा... आपकी तो सारी मेहनत और सिनियॉरिटी रह गयी न धरी की धरी... और वो साला क्या नाम है उसका... वर्मा साहब !... बड़ा राइटर बना घूमता है... मैंने उसको लेखक बनाया, और आज उसने मुझे ही धक्के मार कर घर से निकाल दिया... और मेरी बीबी साली... वो रईस बाप की बेटी, जिससे मैंने इतना प्यार किया, ऐशो आराम के लिए अपने बॉस के साथ रंगरेलियां मनाती है... किश्तों में कार ख़रीद कर मुझ पर धौंस जमाती है...' ऐसे ही कुछ लटके-झटके डाल दो. दिस... आई लीव इट टू यू..." चीफ़ कुछ देर के लिए चुप हो गया. सिगार के एक-दो गहरे कश लिये और फिर शुरू हो गया. "हां... दारू पीकर रोने दो साले को... ख़ूब रोने दो... यही उसका फ्रेमवर्क है... जो टूटता जाता है... वी शुड 'इनलार्ज' दिस. खूब रोयेगा तो पागल हो जायेगा. जानते हो, पागलपन के ठीक पहले की स्टेज क्या है ? खूब रोना या ख़ूब हंसना."

"चीफ़ ! क्यों न हम ऐसा करें कि यह आदमी कोई ग़ैरक़ानूनी धंधा करके लाखों रुपये कमा ले और इसकी पत्नी अपने तमाम गिले-शिकवे भूल कर उस पर पहले की तरह ही प्यार बरसाने लगे. यह भी एक अच्छा क्लाईमैक्स हो सकता है." संजय ने कुछ हिचकिचाते हुए सुझाव दिया.

"नहीं ! चीफ़ ने टोक दिया -" पचास के आसपास की उम्र का आदमी आमतौर पर ग़ैरक़ानूनी धंधा करने की हिम्मत नहीं कर पाता. हां यह हो सकता है कि वो जुए में एक भारी रक़म जीत जाये... रेस या लॉटरी... पर यार यह सब कुछ बहुत पुराना और 'जन-मन-गण' जैसा पैबंद लगता है... नहीं यह सब नहीं चलेगा."

"चीफ़ ! अगर ये आदमी अपनी बीवी को तलाक़ देकर किसी रईस विधवा औरत से शादी कर ले तो कैसा रहेगा ! गाड़ी -बंगले की हवस भी पूरी हो जायेगी." क्रियेटिव हेड ने कहा.

"वो विधवा इससे शादी क्यों करेगी ?"

"वो पैंतालिस-पचास के क़रीब है... ढलती उम्र में सहारे की ज़रूरत तो होती ही है."

"हूं... बेटे का क्या करोगे ?"

"बेटे का क्या है ! मां-बाप के आचरण को देखते हुए ही तो बड़ा हुआ है. वो अपना काम करता रहेगा. तटस्थ रह कर... अपना कैरियर बनाने में लगा हुआ है. भाड़ में जायें मां-बाप... और तटस्थ ही नहीं चीफ़... संवेदनहीन. हमारे समाज का संयुक्त परिवार वाला जो ढांचा था उसने लोगों की संवेदना को एक छोटे से दायरे में समेट कर रख दिया था. घर,परिवार... नाते-रिश्ते... लेकिन रातोंरात दौलत बटोरने का बाज़ारवाद का ये जो ऑर्केस्ट्रा बज रहा है, उसने तो लोगों की संवेदना को नष्ट कर दिया है. रिश्तों में दौलत की घुसपैठ से रिश्तों के तो चिथड़े ही उड़ गये हैं. संवेदना के सिमटने जाने और नष्ट हो जाने में जो फ़र्क़ है न चीफ़ उसे 'इनलॉर्ज' करके इसे हम काफ़ी नाटकीय बना सकते हैं. ड्रॉमेटिक एलिमेंट्स... चैनल वाले भी इसे पसंद करेंगे."

"गुड ! वैरी गुड ! अब तुम क्रियेटिव हेड की तरह बात कर रहे हो. यू आर एन एसेट टू माई 'विजन-क्रियेशन' ...आगे चलो, बेटा कैरियर बनाने के लिए क्या-क्या करता है ये दिखाओ. जल्दी से जल्दी शिखर पर पहुंच जाने की होड़, ग़लत-सही, नैतिक-अनैतिक कुछ भी करना पड़े. सफलता पा लेनी है. किसी भी क़ीमत पर, दूसरों से आगे निकलना है... दौड़ते रहो... लड़खड़ाये या गति धीमी हुई तो पीछे वाला तुम्हे कुचलते हुए आगे निकल जायेगा. हमारे आसपास समाज में यह जो गलाकाट स्पर्धा चल रही है उसके पीछे संपन्नता की लालसा ही तो है. इस लालसा ने एक 'अनकन्सर्ड क्लास' ...एक सरोकार हीन वर्ग को जन्म दिया है. इस सरोकार हीन वर्ग को मां-बाप की क्या चिंता... ! ...ब्रिंग ऑल दीज़ एलिमेंटस... वी कैन इनकैश.. ट्रैजिक सेंटिमेंटस... हमें भावनाओं को ही तो भुनाना है. काफ़ी दिलचस्प, नाटकीय और रियलिस्टिक बनेगा. इनकी ट्रेजडी को प्रोजेक्ट करते हुए हम इस कहानी को अलग ढंग से प्रोजेक्ट करेंगे. आई एम श्योर दिस विल क्लिक. देखो, अभी फिफ्टी टू एपिसोड की ही बात हुई है. हम इसे आगे ले जा सकते हैं... तुम कल चैनल वालों से इसी लाइन पर 'डिस्कस' कर लो. चैनल-डॉयरेक्टर से मैं बात कर लूंगा... ओ. के." चीफ़ काफी उत्साहित लग रहा था.

"तो यह तय रहा कि अंत में इस आदमी को पागल हो जाने दें." क्रियेटिव हेड ने सामने रखी फाइल एक तरफ़ सरकायी.

"बिल्कुल हो जाने दो."

"और पत्नी का क्या करें ?"

"उस कमबख़्त को शराबी बना दो. ऐशोआराम की हवस में पराये मर्द की लत तो लग ही गयी है उसे. अय्याशी और शराब ! इनमें से एक चीज़ भी आदमी को नष्ट करने के लिए काफ़ी है. फिर ये तो करेला और नीम चढ़ा... आत्महत्या करने के अलावा रास्ता क्या बचेगा उसके पास !"

"लेकिन ...यह तो बहुत ही दुःखद अंत हो जायेगा."

"हां, दुःखद तो है पर जीवन की सच्चाई भी तो यही है. अतृप्त महत्वाकांक्षाओं के मारे लोग... अपनी सामर्थ्य को न पहचान कर ख़ुशफ़हमियों में जीने वाले... किश्तों में कार ख़रीदने और किश्त चुकाने की चिंता में शराब में डूबे ऐसे तमाम लोग तो किश्तों में आत्महत्या ही कर रहे हैं न ? इनका अंत तो दुःखद ही होना है."

१५७४, म्हाडा वनराई कालोनी, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, गोरेगांव (पूर्व), मुंबई - ४०० ०६५.

चक्रव्यूह

सैली बलजीत

उसे गाड़ी की फ्रंट सीट पर स्टीयरिंग के सामने कांच की दूसरी तरफ़ नज़रें गड़ाये हुए लगभग तीन घंटे हो चले थे. सामने से आने वाले ट्रैफिक पर वह बराबर नज़र टिकाये हुए, कंधे पर रखे गमछे से बार-बार माथे पर आये पसीने को भी बराबर पोंछता रहा था. आषाढ़ की चिलचिलाती धूप से वह बेचैन हो चला था. उसे सबसे ज़्यादा चिंता इसी बात की थी कि जितनी जल्दी हो सके वह जालंधर पहुंच जाये... लेकिन अभी जम्मू से चले हुए तीन घंटे ही हुए थे और वह इत्मीनान से कहीं बैठकर सुस्ताने की इच्छा लिये हुए भी कहीं रुका नहीं था रास्ते में. ...पठानकोट से पहले कई ऐसे अड्डे आते हैं ....जहां खाने पीने की व्यवस्था के साथ-साथ नहाने का भी प्रबंध है... उसकी आंखों के सामने माधोपुर और सुजानपुर के आसपास नहर के किनारे पर बने हुए कितने ही ख़ूबसूरत ढाबों के अक्स उतर आये थे... सबसे बढ़कर उसे गाड़ी के पीछे लदी लाश से आ रही सड़ांध ने परेशान किया हुआ था. इस वक़्त अगर वह घर में होता तो अपने बच्चों के संग टेलीविजन देख रहा होता. सरकारी छुट्टी का सारा मज़ा किरकिरा हो गया था... सच ही पुलिस में ड्राइवरी करने की नौकरी उसे बहुत ही बेहूदा लगने लगी थी. हुक्म ही ऐसा था कि बड़े साब को इनकार करना नौकरी के साथ खिलवाड़ करनेवाली बात थी... उसे तो इतना ही आदेश मिला था कि वैष्णोदेवी की यात्रा से लौटते श्रद्धालुओं में से गोलीबारी का शिकार हुए किसी लावारिस आदमी की लाश को ठिकाने लगाना है. वह साब का हुक्म सुनकर एक बार तो जड़ सा हो गया था. उसे थाने में आते ही एक काग़ज़ का पुर्ज़ा थमा दिया गया था... जिस पर उस मरने वाले आदमी का पूरा ब्यौरा दर्ज था. शहर के नाम के सामने जालंधर और उसके आगे कोई अता-पता अंकित नहीं था.

उसके सामने इस वक़्त एक ही लक्ष्य था कि लाश को जालंधर के पुलिस थाने के थानेदार तक पहुंचाना और वापस लौट आना... पठानकोट से पहले लखनपुर के नाके पर उसने सरकारी गाड़ी को खड़ा कर दिया था... काग़ज़-पत्रों की जांच करवाने वह नीचे उतर गया था. लगभग आधा घंटा लग गया था वहां, औपचारिकताएं निपटाते हुए... उसके साथ ही नाके पर तैनात एक पुलिसकर्मी गाड़ी के पीछे चढ़कर लाश को देखने लगा था. जो लकड़ी के बड़े से बक्से में बंद करके सील कर दी गयी थी... एक साथ सड़ांध का ज़ोरदार भभका हवा में फैल गया था. उस ड्यूटी वाले पुलिस कर्मी ने नाक पर रूमाल रख लिया था. उसके दिल में आया था कि कहीं आगे चलकर जमकर खाना खाया जाये. भूख भी ख़ूब तेज़ हो चली थी.

'उस ड्यूटी वाले संतरी ने उससे पूछा था, 'कहां लेकर जाना है इस डेड बॉडी को ?'

उसने फ़र्राटे से कहा था, जालंधर... सभी कुछ तो लिखा है काग़ज़-पत्र में. ड्यूटी है सरकारी... क्या करें... वरना लाशों को ढोना कौन गवारा करता है ?

'उसी हादसे वाले लोगों में से है ना... जो परसों वैष्णोदेवी की यात्रा के दौरान मिलीटेंटों की गोलियों का शिकार हुए थे...?'

'बिलकुल वही है... जो लाशें पहचान में आयी हैं, उनमें से यही एक लाश है... लावारिस... इसे जालंधर पहुंचाना मेरी ड्यूटी है... '

'लावारिस लाश को वहीं कहीं ठिकाने लगा देना था... दाह संस्कार करके... '

'नहीं भाई, सरकारी कामों में बहुत कुछ देखा जाता है... सरकारी काम ऐसे थोड़े चलते हैं... वरना किसे पड़ी है जम्मू से जालंधर तक इस पहुंचाने की... '

'मरने वाला मर्द है या औरत... '

'क्या बताऊं ? बस समझ लो इन दोनों में से कोई भी नहीं... '

'क्या मतलब... ?'

'ठीक तो कह रहा हूं... मरने वाला यह शख़्स हिजड़ा है...' वह लगभग मुस्कराने लगा था, इस बात पर.... 'जालंधर जाकर इसे कहीं थाने में पहुंचाना है.... फिर... आगे की कारवाई वही करेंगे थानेवाले...

❐

वह वहां से जब चला तो धूप और सिर पर आ गयी थी.

उसने गाड़ी स्टार्ट करने से पहले एक पतली सी लकड़ी ढूंढकर डीज़ल वाली टंकी के अंदर घुसाते हुए बचे हुए डीज़ल का जायज़ा लिया था... उसे इस बात की शंका हुई थी कि वापसी के समय गाड़ी में अवश्य ही डीज़ल डलवाना है. माधोपुर अभी पीछे छूटा था. उसे सुजानपुर वाले ढाबों की करारे तड़के वाली दाल पर डाली गयी मीट की तरी स्मरण हो आयी थी. एकाध बार वह अपने अफ़सरों के साथ इन ढाबों पर खाना खा चुका है. पिछले साल

ही सरकारी ड्यूटी के वक़्त यहां रुके थे. तब थानेदार साब ने उसे भी दो-तीन तगड़े से पेग पिलवाये थे अंग्रेजी दारू के. लेकिन इस वक़्त उसने लाख चाहकर भी दारू नहीं पी थी. सिर्फ़ तड़के वाली दाल के साथ तंदूरी रोटियां खाकर वह उठ गया था. उसने जमुहाई ली थी.

वह फिर स्टीयरिंग के सामने आ बैठा था.

❐

वह लगभग शाम को जालंधर पहुंचा था. राह चलते लोगों से उसने गाड़ी की खिड़की में से बाहर झांकते हुए, थाने का अता-पता पूछा. उसके दिल में आया था कि किसी भी तरह सारी औपचारिकताएं निपटा कर वह कुछेक घंटों में निवृत्त हो जायेगा. कुछ ही क्षणों मे वह थाने पहुंच गया था. पुलिस की गाड़ी देख, वहां पर तैनात ड्यूटीवाला संतरी ज़्यादा संजीदा नहीं हुआ था.

'किससे मिलना है ?' वह संतरी बोला था. उसने उत्तर दिया था, 'मिलना नहीं... एक लावारिस लाश हवाले करनी है, आपके यहां...'

'कहां से आये हो ?... कैसी लाश ?' वह संतरी भौंचक्का सा हो गया था.

'जम्मू से आया हूं... वैष्णोदेवी की यात्रा में मरे लोगों में से एक लाश लावारिस निकली है... उसे लेकर आया हूं... थानेदार साब भीतर हैं... ?'

'नहीं तो... '

'कोई और होगा ज़िम्मेदार आदमी... ?' वह सरकारी हक जतलाने लगा था.

वह संतरी बोला था, 'थानेदार साब कल सवेरे ही मिल सकेंगे... उनसे बातचीत करके ही कोई इसे रिसीव करेगा ना? ...बोलो कोई और सेवा हो बताओ... यहां बैठने से कोई फ़ायदा नहीं... जालंधर का कोई अता-पता है इस काग़ज़ पर...?' उसने काग़ज़ उस संतरी को दिखा दिया था, 'यह लो... देख लो... बस यही कुछ है.' उस संतरी ने सरसरी निग़ाह डालते हुए काग़ज़ जांचा था. वह बस देखता रहा था.

'किसी हिजड़े की लाश है इस बक्से में... यही लिखा है... ना ?'

'बिलकुल... तब लावारिस कैसे हो गयी ? बोल मेरे भाई...'

'यह आप लोगों ने देखना है... मुझे तो 'हैंड ओवर' करके वापस जाना है... किसी दूसरे अहलकार से मिलवा दो... '

'कहा ना.... 'डेड बॉडी' का मामला है... कोई भी रिस्क नहीं लेता... थानेदार साब के आने के बाद ही अब कुछ होगा...'

'देखो रात होने को है... कुछ करिए... '

'मैं क्या कर सकता हूं... भीतर जाकर मुंशी से बात कर लो... जाओ... पर मेरे ख़्याल में... कुछ होने वाला नहीं... '

सैली बलजीत

आजादी के बाद, पंजाब के शहर बटाला में जन्म; विद्युत इंजीनियर

प्रकाशन : *देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं 'हंस', 'कथाक्रम', 'संचेतना', 'सारिका', 'गंगा', 'कथाबिंब', 'कदंबिनी', इत्यादि में कहानियां प्रकाशित. 'अपनी-अपनी दिशाएं', 'गीली मिट्टी के खिलौने', 'अब वहां सन्नाटा उगता है', 'तमाशा हुआ था', 'बापू बहुत उदास है', 'घरौंदे से दूर' (कहानी संग्रह); 'धूप में नंगे पांव', 'ख़ूबसूरत शहर और चीखें', तथा 'क़हर के दिन' (संपादित कहानी संग्रह) तथा 'मकड़जाल' (उपन्यास); 'नरककुंड', 'टप्परवास' तथा 'अंधा घोड़ा' (कहानी संग्रह) तथा 'नागफ़नियों के देश में' (नाटक) तथा 'जब पिताजी घर में होते हैं' (कहानी संग्रह) शीघ्र प्रकाश्य.*

विशेष : *गुरुनानक देव विश्वविद्यालय से एम.फिल. हेतु कहानियों पर शोध कार्य संपन्न, पंजाब हिंदी साहित्य अकादमी से भारत के राष्ट्रपति के हाथों सम्मान प्राप्त (१९८६). इसके अतिरिक्त अनेकों सम्मान प्राप्त.*

संप्रति : *असिस्टेंट इंजीनियर के पद पर कार्यरत.*

उसने भीतर थाने में जाकर मुंशी से बतियाते हुए कितना समय बर्बाद कर दिया था, पर कुछ भी सार्थक हल नहीं निकला था. उसके वापस लौट जाने की इच्छा दम तोड़ती हुई प्रतीत हुई थी.

उसे वह रात पुलिस गाड़ी में ही बितानी पड़ी थी. उसे पूरी रात भर लगभग जागते हुए रहना पड़ा था. बीच-बीच में उठकर वह खुली हवा में टहलने लगता तो फिर नींद का झोंका उसे घेर लेता. उसे दूसरी सुबह तक इंतज़ार करना था. सुबह होते ही उसने सबसे पहले कई लोगों को गाड़ी के आसपास मंडराते हुए देखा था. उसने उनमें से एक आदमी से पूछा था, 'यहां हिजड़ों की बस्ती कहां पड़ती है ?'

'क्यों भाई, क्या बात हुई सवेरे-सवेरे.... ' वह आदमी बोला था.

'एक लाश की पहचान करवानी है... '

'कौन-सी लाश ?'

'जो गाड़ी के पीछे बक्से में बंद है... वैष्णोदेवी की यात्रा के दौरान हुए कांड में इसकी 'डेथ' हुई है... आपके शहर का है यह हिजड़ा. पहचान हो जाये तो मैं भी कहीं ठिकाने लगूं...'

'हमारे साथ चलोगे या उनमें से किसी को यहां बुलवाना पड़ेगा ?' वैसे सरकारी काम है... आप ही जायें वहां... पता बता देता हूं आपको... रेलवे स्टेशन के पिछवाड़े वाली बस्ती में रहते हैं वे लोग...

'कितनी दूर पड़ती है वो बस्ती ?'

'यहां से काफ़ी दूर है... आप ऐसा करें... गाड़ी वहीं ले जायें... गाड़ी में 'डेड बॉडी' तो है ही... वहीं पहचान करवा लेना...'

'मेरे साथ कोई जन आ जाये तो ढूंढ़ने में दिक्कत नहीं होगी.'

एक जन उसके साथ जाने को तैयार हो गया था, लेकिन, एक बार वह पुलिस वालों से फिर मिल लेना चाहता था. 'डेड बॉडी' लावारिस होने की सूरत में कार्रवाई तो वही लोग करेंगे ना ? उसे तो बस इन काग़ज़ पत्रों पर किसी पुलिस अधिकारी के 'साईन' ही करवाने हैं और बस वापस लौटना है. उसने सोचा था कि आज इतवार की छुट्टी का दिन अपने घर वालों के साथ गुज़ारने में कितना अच्छा लगता है. फिर पूरे हफ़्ते के छुटपुट ज़रूरी घरेलू काम भी तो इसी दिन निपटाने होते हैं... फिर इसी दिन तो रिश्तेदार कहीं न कहीं से मिलने आ ही जाते हैं. उसका इतवार आज बेकार में जा रहा था उसे ग़ुस्सा आया था... पर नौकरी में नख़रा नहीं चलता, वह जानता है. तभी तो वह आ गया था उसे क्या पता था कि परेशानियां और दिक्कतें भी झेलनी पड़ सकती हैं. फिलहाल वह स्वयं को छटपटाते हुए किसी परिंदे की तरह महसूस करने लगा था.

❐

उसने एक बार फिर थाने के किसी दूसरे ज़िम्मेदार कर्मचारी से बतियाना चाहा था. उसे थाने के गेट पर ही छोटा थानेदार रौबीली मूंछों को ताव देते हुए दिखा तो उसे सलाम करते हुए गुज़ारिश की थी, 'हमारा भी कुछ सोचो हुज़ूर... कल रात का यहां पड़ा हूं... एक लाश लेकर आया था लावारिस... जो कारवाई करनी है करो... मुझे फ़ारिग कर दें...'

'मैं क्या कर सकता हूं बोल ?'

'आप ही ने करना है... सब... मालिक हैं आप...'

'लावारिस लाश को हम कैसे रिसीव कर लें... बोल भाई ?'

'आप इसका कुछ करिए...'

'पता है पुलिस महकमे के पास लावारिस लाशों का दाह संस्कार करने के लिए कोई फंड नहीं होता... पता है ना ?'

'तो बोलिए कहां लेकर जाऊं इस 'डेड बॉडी' को ?'

'म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन में ऐसी लाशों को जलाने-दफ़नाने के लिए फंड होते हैं...'

'आप डेड बॉडी को रिसीव कर लें... बाद में उनसे बात कर सकते हैं कॉर्पोरेशन वालों से...'

'पता है... आज इतवार है... वहां कौन मिलेगा.. तुम चाहते हो... इस डेड बॉडी को हम रिसीव करके... मरा हुआ सांप गले में डाल लें ? ना भाई... यह काम हमसे क्यों करवाते हो... तुम ऐसा करो.. कॉर्पोरेशन वालों से मिल लो...'

'कहां मिलूं... दफ़्तर में छुट्टी है ना... इतवार के कारण...'

'यह मुझे नहीं पता... आपका काम है... पुलिस वाले कहां-कहां मरें खपें... ठेका ले रखा है हमने... कोई मर गया तो बोल हम क्या करें...'

वह तैश में आ गया था, 'मैं भी तो कल सवेरे से ड्यूटी निभा रहा हूं... बोलिए... मैं किससे कहूं... ?'

'कहा ना.... कॉर्पोरेशन वालों का काम होता है... लावारिस लाशों को ठिकाने लगाने का...'

'सुन लिया है... पर पुलिस की भी कोई ज़िम्मेदारी बनती है...'

'अब हमें नसीहत देने लगे हो... तुम एक काम करो... अगर हिजड़े इस लाश को क़बूल लेते हैं तो एक बार ट्राई करके देख लो... अगर उन लोगों में से किसी की यह लाश निकल आये तो सारे झंझट ख़त्म... बस उनमें से किसी के साइन करवा लेंगे... बोल अब ख़ुश हो न ?'

'ख़ुश क्या होना है... एक नयी मुसीबत खड़ी हो गयी है... अब ढूंढ़ते रहो हिजड़ों की बस्ती...'

'मैं तो कहता हूं... बड़ी ग़नीमत होगी अगर आज शाम तक भी फ़्री हो जाओ तुम... तुम्हें किसने कहा था... इस लफड़े में पड़ने को ?'

'मुझे तो यही कहा गया था कि पुलिस स्टेशन के किसी जिम्मेदार अहलकार से साइन करवाने हैं इस काग़ज़-पत्र पर...'

'जिम्मेदार अफ़सर तो यहां डिप्टी साब ही हैं जो आपको कल तक तो मिलने से रहे... आउट ऑफ स्टेशन हैं... किसी ज़रूरी काम से गये हैं... कल तक कहां लिये फिरते रहोगे ...सड़ांध मारती हुई इस लाश को ?'

उसके सामने अब हिजड़ों की बस्ती तक जाकर लाश की पहचान करवाने का काम अहम था. उसने सोचा था, उसके बाद ही कॉर्पोरेशन वालों तक दौड़ा जाये. उसे फ़िलहाल, लाश को कहीं ठिकाने लगाने की भयावह सोच भीतर से चाटती हुए खोखला कर रही थी.

उसने गुस्से में जलते-भुनते हुए एक भद्दी सी गाली निकाली थी. बुदबुदाते हुए... आते ही गाड़ी की खिड़की खोल दी थी. पीछे पलट कर क्या देखना था, लाश वाला बक्सा अपनी जगह पर यों का यों पड़ा था. उसमें कुछ भी नहीं बदला था, सिर्फ़ तीन दिनों से दाह-संस्कार को तरसती लाश में से दुर्गंध अधिक तेज़ी से हवा में फैलते हुए, नथुनों में घुसने लगी थी.

शहर की ऊबड़-खाबड़ सड़कों को रौंदते हुए गाड़ी हिजड़ों की उस बस्ती में आ गयी थी. उसने गाड़ी खड़ी करते ही किसी बच्चे से पूछा था... जो आंखें मलते हुए नल की तरफ़ जा रहा था शायद, 'इस बस्ती को क्या कहते हैं ?'

'क्यों बाबू... क्या बात... पुलिस वाले लगते हो... ?' उसने शायद मेरी ख़ाकी वर्दी पर लगे पुलिसिया चिन्हों को देखते हुए कहा था.

'हां भई... यहीं रहते हैं ना... गाने बजाने वाले... ?'

'हिजड़े कहो ना ?'

'हां भई... हिजड़े... इनके बड़े गुरू इस वक़्त मिल जायेंगे ना ? ...ज़रा बता सकता है ?'

'कहीं नचवाने तो नहीं हिजड़े घर में....? कोई बच्चा-बच्चा हुआ है ना ? ....बधाई का काम हो गया फिर तो....'

'नहीं ओए.... उल्टी परेशानी आ पड़ी है... इनका कोई साथी वैष्णो देवी के दर्शनों के लिए गया था... वहीं मारा गया उग्रवादियों की गोलियों से... उसकी लाश है इस गाड़ी की पिछली तरफ़... '

'सामनेवाली गली का आख़िर का मकान है... बाहर एक भैंस बंधी होगी... वही है... '

कुछ क्षणों में वह वहां जा पहुंचा था, गाड़ी गली के मोड़ पर ही खुली जगह पर खड़ी करके...

'आपका कोई साथी वैष्णो देवी की यात्रा पर गया था ?' उसने आते ही अपना मंतव्य ज़ाहिर किया था.

'गया होगा... यहां कई जने तो रहते हैं... नाम का है बताओ तो ही पता चलेगा ना ?... पर बात क्या हुई ?' वह ज़नाना लिबास वाला हिजड़ा बोला था, उसका पुलिसिया पहरावा शायद उसे आतंकित कर गया था.

'एक लाश मिली है, पुलिस को... लावारिस है... कोई जना पहचान का मिले तो इसे सुपुर्द करूं किसे के...' उसने फिर हाथ उछालते हुए कहा, 'कहां है लाश... हमारे पास क्यों आये हो ?'

'क्योंकि वह शख़्स आपकी बिरादरी से है... ऐसा लिखा है काग़ज़-पत्रों में... आप मेरे साथ चलकर देख लें एक बार...'

'कहां ?'

'बाहर गाड़ी तक चलकर जाना पड़ेगा... ' तभी उसके पीछे एक साथ ज़नाना लिबास पहने हुए कई हिजड़े चलने लगे थे. होठों पर भौंडे किसम की सस्ती सी लिपस्टिक पोते हुए, मुंह में पान चबाते हुए वे सभी मसख़री करते हुए, बाहर सड़क पर आ गये थे.

'दिखा बाऊ कहां है लाश... ' एक ने पूछा था, गाड़ी की तरफ़ आते हुए.

'ऊपर आना पड़ेगा गाड़ी में... आ जाओ' ...उसने हिदायत दी थी.

'बहुत सड़ांध आ रही है... ओह -'सत्यानाश हो... ' दूसरे हिजड़े ने हाथ पर हाथ मारते हुए कहा था.

'तीन दिनों से दर-दर भटकती इस लाश से बदबू नहीं आयेगी तो और क्या आयेगा... मैं तो कहता हूं पुण्य कमा लो... इसे कहीं ठिकाने लगाओ... '

'इसे खोलो भी ना बक्से को... '

'खोलता हूं...' वह तभी उछल कर गाड़ी के पिछवाड़े जा चढ़ा था.

'यह लो... बक्सा खोल दिया... अब कोई भी आकर इसकी पहचान कर सकते हो... आओ... पुण्य का काम है...'

'ना भई... जाने किसकी लाश ले आये हो... हमारी बिरादरी से तो नहीं यह... क्या नाम बताया इसका... ?' उनमें से एक ने लाश को अस्वीकारते हुए कहा था...

'संभू... यही लिखा है काग़ज़ों में'

'आपको इसका नाम कहां से पता चला ?'

'इसकी जेब से निकले बटुए में पड़े काग़ज़ों में... सरकारी काम बहुत पुख़्ता होते हैं... अगर संभू है इसका नाम तो ऐसे ही तो नहीं लिख दिया काग़ज़ पर... कोई प्रूफ मिला है तो ही ना ?' उसने उन लोगों को लंबा भाषण सुना दिया था.

वे सभी ज़नाना लिबासवाले हिजड़े गली के भीतर चले गये थे, हाथ उछाल-उछाल कर ठ्ठते हुए, उसको मायूसी हुई थी इससे. उसे लगा था, अभी यंत्रणा ख़त्म कहां हुई है... अभी तो ऊबा देने वाली, लंबी यंत्रणा की शुरूआत ही हुई है. उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी थी. उसके साथ ज़ो आदमी आया था, उसकी बग़ल में बैठ गया था, उसी जगह छोड़ना था उसे जहां से बैठाया था.

उससे बतियाते हुए उसे अच्छा लग रहा था, उसने सोचा था, शहरवासी है, शहर की अच्छी खासी पहचान रखता होगा. उसने गाड़ी में बैठे उस शख़्स से गुफ़्तगू जारी रखी थी, 'कॉर्पोरेशन वाले बड़े अफ़सर का कोई फ़ोन नंबर मिल जाये तो बात करें...'

'फ़ोन नंबर का मुझे क्या पता जी... ?' उसने कंधे उचका दिये थे.

'किसी अफ़सर की रिहायश का तो पता होगा...'

'उसका पता चल जायेगा... दफ़्तर में कोई चौकीदार तो होगा ही... मेरे ख़्याल में आप वहां जायें तो... सरकारी ड्यूटी पर हो आप... कोई परबंद तो करना ही होगा...'

वह तैश में आ गया था, 'कहां-कहां गाड़ी में लदी लाश को लिये भटकता रहूं ? बदबू से हमारा यह हाल है तो रास्ते में आने जाने वालों का क्या होगा... कौन सुनता है... सब साले अपनी स्किन बचाते हैं....'

कॉर्पोरेशन के दफ़्तर में चौकीदार से भेंट हुई थी. उसने इस सिलसिले में कंधे उचका कर असमर्थता प्रकट की थी. वह और मायूस हो गया था. उससे और बतियाना मूर्खता ही थी. पुलिस

वालों का नकारात्मक व्यवहार उसे पहले ही से खल रहा था. उस पर हिजड़ों के प्रमुख ने उसे और प्रताड़ित कर दिया था.

फ़िलहाल उसने अपने साब को पी.सी.ओ. पर जाकर, सारी जानकारी देना उचित समझा था. वह अजीब दुविधा में फंस गया था. इस सिलसिले में अपनी जेब से अपने अधिकारियों के लिए किये गये ख़र्च में बढ़ोत्तरी होती गयी थी... जाने अभी और कितनी बार फिज़ूल में टेलिफ़ोन मिलाने का क्रम जारी रखना था उसे... घर में भी वह अपनी दुविधा की सूचना देना चाहता था. उसने बटुए में से पड़ोस वाले चौधरी साब का टेलिफ़ोन नंबर ढूंढा था. अक्सर वह इसी नंबर पर घर में बातचीत कर लेता रहा है. इस वक़्त टेलिफ़ोन काल के रेट भी 'फुल' होते हैं. उसने इस बात की परवाह नहीं की थी. उसे स्मरण हो आया था कि कल सवेरे उसे हर हालत में अपने घर पहुंचना है. किसी क़रीबी रिश्तेदार की लड़की की शादी में अगर वह सम्मिलित न हुआ तो पूरी उम्र का उलाहना रह जायेगा. लेकिन, कौन सुनेगा कि वह किस दुविधा मे फंसा है. उसने भगवान का स्मरण किया था कि आज शाम तक इस मुसीबत से निजात मिल जाये तो वह बोझ से मुक्त हो.

❐

ऊपरवाले अफ़सरों का एक ही आदेश मिला था कि इस लावारिस लाश को किसी अधिकारी तक पहुंचा कर ही वापस लौटे वह. इस वक़्त वह क्या कर सकता था. कर भी क्या सकता है. कल से ऐड़ी-चोटी का ज़ोर लगाते-लगाते वह थक गया है. लेकिन इस पराये शहर में पुलिस वाले जाने क्यों शव लेने में आनाकानी कर रहे हैं, यह बात उसकी समझ से बाहर है. यहां जालंधर में उसके दूर के रिश्तेदार रहते हैं, लेकिन इस स्थिति में वह कहीं भी जा नहीं सकता था. लाशवाली गाड़ी लेकर किसी के घर जाना उचित नहीं लगा था उसे.... पूरे मोहल्ले में बदबू न फैल जाती. लगभग दोपहर हो चली थी. सवेरे जमकर नाश्ता भी नहीं किया था, जंगल-पानी वह पुलिस वालों की लैट्रिन में कर आया था. पुलिस स्टेशन के सामने पीपल के पेड़ के नीचे वाले खोखे से उसने एक कप चाय और एक डबलरोटी खा ली थी. इस वक़्त उसे भूख सताने लगी थी. लेकिन उसने फिलहाल इसे मिटाने का क्रम स्थगित कर दिया था. उसे तो बस शीघ्र ही इस कांड से निजात पाना था, किसी भी तरह. कॉर्पोरेशन के चौकीदार ने उसे दफ़्तर के किसी बड़े अफ़सर के घर का पता बताया तो उसे आशा की एक धुंधली सी किरण नज़र आने लगी थी.

उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी थी. घरघराते हुए, गाड़ी आगे को सरकने लगी थी. संकरे बाज़ारों में से गुज़रते हुए, बड़ी मुश्किल से उसने चौकीदार का बताया हुआ पता ढूंढ निकाला था. गाड़ी जहां भी खड़ी करता वह, आते-जाते लोग उचक-उचक कर गाड़ी में लदी लाश को निहारने लगते जैसे तमाशा हो रहा हो. वह लोगों

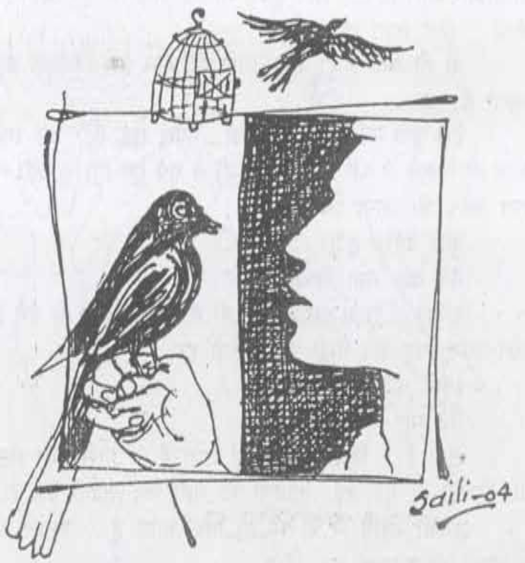

को वैष्णो देवी की यात्रा के दौरान हुए गोली कांड का ब्यौरा देते-देते थक गया था

उसने बड़े से तिमंज़िला मकान पर लगी नेम प्लेट पढ़ी थी. दफ़्तर के सुपरइन्टेंडट का घर ही था. उसने कॉल बेल का बटन दबाया तो एक मांसल औरत ने दरवाज़ा खोला था. कुछ देर बाद एक मूछों वाला आदमी उसके सामने खड़ा था.

'आओ... किससे मिलना है ?' उस आदमी ने उसे घूरते हुए देखा था.

'अग्निहोत्री साहब ही हैं ना आप ?' उसने प्रश्न दाग़ा था.

'हां भई... कहो क्या काम है ?'

'मैं सरकारी ड्यूटी पर आया हूं... जम्मू से... आपके शहर का एक शख़्स वहां गोलीकांड में मारा गया है... उसकी लाश लेकर आया हूं... लावारिस लाश का मामला है... आप ही कुछ कर सकते हैं...'

'पुलिसवालों का काम है यह तो... वहां जाओ ना...'

'वहीं से तो आ रहा हूं... वे लोग भी इसी तरह कह रहे हैं... तभी तो यहां आया हूं, आपके पास... कल शाम से जाने कहां-कहां नहीं गया मैं...'

'मैं क्या कर सकता हूं... बोलो... दफ़्तर में तो छुट्टी है ना... पता है ना... इतवार वाले दिन भला दफ़्तर खुलते हैं... कल दफ़्तर में आना...'

'बहुत लेट हो गया हूं... पहले ही से... किसी मातहत को फ़ोन करके... इसे ठिकाने लगवाइए... कल तक तो लाश और सड़ांध देने लगेगी.'

'तो मैं क्या कर सकता हूं... आप लोग क्यों चले आते हो इतवार वाले दिन... फिर हुक्म तो बड़े साब का ही चलेगा... बोलो... ठीक कहा ना ?'

'वो तो ठीक है... आप उनसे ही फ़ोन पर कॉन्टेक्ट कर सकते हैं....'

'ऐसे कुछ नहीं होगा... समझे... फिर छुट्टी है... बड़े साब आज तो मिलने से रहे... किसी शादी में गये हुए हैं.... कहा ना कल सवेरे आ जाना दफ़्तर... '

'कुछ करिए हुज़ूर...'

'मैंने कब मना किया है...?'

'देखिए... लाश ख़राब हो रही है... चार दिन हो गये हैं इधर-उधर लाश की मिट्टी पलीद होते हुए... '

'इसमें बोलो मेरा क़सूर है ?'

'मैंने यह तो नहीं कहा...'

'सुना है... किसी हिजड़े की लाश है... उनसे मिल लेना था, हिजड़ों के गुरू को... इतना भी नहीं कर सकते वे...?'

'उनकी बस्ती में से भी हो कर आया हूं... स्सालों ने पहचानने से इनकार कर दिया...'

'इतना पैसा साथ लेकर जायेंगे वे... उनका कौनसा कोई भी पुत्तर है... किसके लिए पैसा बटोर रहे हैं... तालियां बजाते हुए... भैण के यार...'

'उन्हें बहुत कहा था पुण्य कमाने को... फिर मरे की मिट्टी को ठिकाने लगाना तो पुण्य गिना गया है शास्त्रों में...'

'वो क्या जाने शास्त्रों को... आ जाते हैं तालियां लगाते हुए... तब तो अड़ जाते हैं... चाहे कोई ग़रीब ही क्यों ना हो... उन्हें क्या... उन्हें तो एक हज़ार एक चाहिए ही... देने वाला चाहे भाड़ में जाये.'

'आप कुछ करते तो मेरी जान भी सुखी हो जाती....'

'कहा ना... मैं कुछ नहीं कर सकता... दफ़्तर खुलने तक तो इंतज़ार करना ही पड़ेगा....'

उस आदमी ने दो टूक अपनी बात कहते हुए इस अध्याय को और लंबा कर दिया था. वह मुंह बाये देखता रहा था. उस आदमी ने चाय पिलानी तो दूर की बात है, पानी तक नहीं पूछा था. उसका गला सूखने लगा था. वहां से आकर उसने गली के मोड़ पर लगी म्युनिसपल्टी की टोंटी से पानी पीया था. उसने राहत की सांस ली थी. लेकिन पहाड़ जैसे दिन को ऐसे ही गुज़ारने का सिलसिला उसे पहाड़ सा प्रतीत हुआ था. वह टूट गया था, ऐसे में क्या करता वह. वह तिलमिला उठा था. घर में बीवी-बच्चों की बहुत याद आने लगी थी. उसे कल हर हालत में अपने घर पहुंचना था. उसने मन ही मन हिसाब बैठाया था कि यहां से वहां टेलिफ़ोन घुमाते हुए, उसने अपनी जेब से लगभग दो सौ रुपये ख़र्च कर दिये थे. उसे मिलना क्या था, इस ड्यूटी... मात्र सफ़री भत्ता... बस... और ऊपर से टेलिफ़ोन पर आये ख़र्च को वह कहां एडजस्ट करेगा... गाड़ी ख़राब होने का जाली बिल ले सकता है वह कहीं से... डीज़ल डलवा कर रसीद तो उसने कल ही ले ली थी... लेकिन डीज़ल में एडजेस्टमेंट थोड़े होता है... वहां जम्मू में होता तो किसी अफ़सर से जाली जर्नी डलवा देता लॉग बुक में, यहां तो किलोमीटर दर्ज हैं मीटर पर... उसने मन ही मन कितने समीकरण बना डाले थे. उसका मन उचाट हो आया था. लेकिन क्या करे वह ? कहां जाये ? किससे फरियाद करे... ? उसने एक बार फिर पुलिस स्टेशन का रुख़ किया था. एक बार फिर वहां जाकर दौड़ धूप करने का निश्चय किया था उसने.

❒

पुलिस स्टेशन में ख़ूब गहमा-गहमी थी. बाहर कितनी कारें-स्कूटर खड़े थे. गेटवाले संतरी से पूछने पर पता चला कि किसी क़त्ल के केस में व्यस्त हैं थानेदार साब. उसने महसूस किया था कि ऐसे में उसकी बात कौन सुनेगा... जहां नोटों की बारिश हो रही हो... वहां उस जैसे निठल्ले की क्या बिसात ? सरकारी काम समझ कर, उसे फिर टरका जायेंगे.

'मैं एक बार फिर बात कर देख लूं भीतर जाकर ?' उसने गेट वाले संतरी से आज्ञा लेनी चाही थी.

'मेरे ख़्याल में इस वक़्त वहां जाना ठीक नहीं... सांठ-गांठ चल रही है अंदर... अच्छा नहीं लगता... फिर उल्टे मुझे ही डांट पड़ेगी... बोलो... ठीक कहा ना ?'

'तो बोलो... मैं क्या करूं... कहां जाऊं...?'

'कॉर्पोरेशन वालों के पास जाना था... कल भी यही कहा था ना... छोटे थानेदार साब ने... बोलो कहा था ना ?'

'कहा था मेरे भाई, आप समझते हैं कि मैं झक ही मार रहा हूं... मेरे तो टायर घिस गये हैं गाड़ी के... कहां-कहां नहीं गया मैं.... ?'

'क्या बोलते हैं वे लोग ?'

'इतवार का रोना रो रहे हैं... एक ही बात पर अड़ा है हर कोई कि आज इतवार है....'

'ठीक ही तो कह रहे हैं... सरकारी काम तो वर्किंग डे ही में निपटते हैं... मैं तो कहता हूं... कहीं आराम से बैठ कर दारू पिओ और मज़े करो... मरने वाला मर गया... आप क्यों चिंता करते हैं...'

'लाश सड़ांध दे रही है... यहां गाड़ी खड़ी करूं तो अभी आप लोग ही नाक सिकोड़ने लगोगे... कहां जाऊं ?' ऐसे लगता है, लाश के साथ-साथ मैं भी अछूत हो गया हूं...

'बात तो ठीक है... इस सड़ांध में कोई भी नाक-मुंह सिकोड़ेगा ही.'

'कोई परबंध करवा दो फिर... आज का दिन तो गया बेकार में... इस लाश का क्या करूं ?'

'सिविल हस्पताल में मुर्दा घर होता है... वहीं चले जाओ... एक रात की तो बात है... वहां एयर कंडीशंड मुर्दा घर में रखवाने का परबंद करवाओ कोई...'

'मेरी कौनसी जान पहचान है वहां.... क्या करूं.... मेरी मदद करो यार... मेरा भी यही महकमा है....'

'चलो थानेदार से फ़ोन करवा देता हूं वहां... आप अपने काग़ज़ पत्र वहां दिखा देना... फिर कौन सा क़त्ल किया है तूने...' वह आदमी बतियाते हुए आप से तुम पर उतर आया था.

'बात डरने वाली थोड़ी है... ज़रा फ़ोन करवा दे तो वहां मेरा वक़्त बच जायेगा... कहीं ऐसा न हो... वहां भी रगड़े खाता फिरूं मैं...'

इसकी चिंता नहीं करनी...

'इस काग़ज़ पर हस्पताल वालों के नाम मार्क करवा दे तो बड़ी मेहरबानी होगी...' उसने काग़ज़ उस संतरी के आगे कर दिया था.

'तुम यहीं खड़े रहो... भीतर मत आना... मैं साब से बात करके देखता हूं...' उस संतरी ने उससे लाश से संबंधित सरकारी काग़ज़ को पकड़ लिया था.

वह उस संतरी को थाने के भीतर जाते हुए देखने लगा था.

लगभग आधे घंटे के बाद वह संतरी वापस लौटा था.

उसे उसके आदेश की प्रतीक्षा थी. लेकिन थानेदार की व्यस्तता शायद अलहिदा किसम की रही होगी... लगता है, अभी तक क़त्ल केस के लिए उन लोगों के बीच चल रही सौदेबाज़ी किसी पड़ाव पर नहीं पहुंची थी. उस संतरी ने कुछ देर और रुकने की सूचना दी थी उसे तो वह ज़्यादा हैरान नहीं हुआ था. अब उसे इससे ज़्यादा और क्या परेशान किया जा सकता था.

वह वहां से निकल आया था. उसने सोचा भाड़ में जायें ये थानेवाले. इनके सिर ख़ाक पड़े. उसे भूख ने बेहाल कर दिया था, जिसके लिए उसे लगभग आधा किलो मीटर चलके जाना पड़ा था. गाड़ी को वह किसी भी सूरत मे वहां ढाबे तक लेकर जाना नहीं चाहता था. उसने सोचा कि अब दिन तो बर्बाद हो ही गया, फिर चाहे चार घंटे ही क्यों न लग जायें... अब उसे इत्मीनान हो चला था कि सरकारी कामों में ऐसे ही होता है. खाना खाते हुए उसे घर की याद आ गयी थी. उसने जमकर खाना खाया था. मीट की आधी प्लेट, तड़की हुई दाल और तंदूरी रोटियां... उसके बाद मलाईवाली चाय. वहां बैठे हुए उसे नींद की झपकियां आने लगीं तो वह हड़बडा के उठ बैठा था. वहां ढाबे पर भी लोग इसी बात की चर्चा करते रहे थे. उसे इस बात की जानकारी पाकर, अच्छा लगा था. शहर में थाने वालों की कारगुज़ारी से लोग खिन्न थे, ऐसा लगा था.

❑

...वापस अपनी गाड़ी की तरफ़ लौटा तो वहां कुछेक नये चेहरे दिखे थे. उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे.

'लीजिए... वो आ गया इस गाड़ी का ड्राइवर...' भीड़ में से किसी ने शायद उसकी पुलिसिया वर्दी से पहचान लिया था उसे.

'मैं ही हूं... क्या बात... बोलिए...' वह फुसफुसाया था. एक सफ़ेदपोश वाला भाई, 'कल ही हमारे पास आ जाते तो यहां तक नौबत ना आती...'

'आप कौन हैं....?' वह विस्मित हो गया था कि इस पराये शहर में उससे हमदर्दी जतानेवाला कौन आ गया.

'मैं और मेरे साथी समाज समिति से आये हैं... बहुत बुरा सलूक कर रहे हैं ये पुलिस वाले... ऐसा सुना है... हमें कहिए... अब क्या बोलते हैं...' उनमें से सफ़ेद पोशाकवाला आदमी फिर बोला था.

'लाश लिये फिर रहा हूं, दो दिन हो गये हैं... बोलो कहां फेंक दूं इसे... कोई इसे लेने को राज़ी ही नहीं... हद्द हो गयी...' वह तैश में आ गया था.

'कहां है लाश ? सुना है हिजड़ों की बस्ती में भी गये थे, उन लोगों ने भी इनकार कर दिया है इसे पहचानने में...'

'बहुत ज़गह से होकर आया हूं... लगता है इन्सानियत का ही बेड़ा ग़र्क़ हो गया है... आप कुछ करिए... मुझे छुटकारा दिलायें...'

'अब क्या मसला है ? थानेदार की कर दें खिंचाई ?'

'लाश सड़ांध देने लगी है... मैं तो कहता हूं... आप लोग ही कुछ कर सकते हैं... इन काग़ज़ पत्रों पर किसी ज़िम्मेदार अधिकारी के साईन करवा दें और इस लाश को गाड़ी से उतरवाएं.. तो मैं वापस जाऊं कहीं... '

'कहां से आये हो ?'

'जम्मू से... दो दिन हो गये हैं... यहां धूल फांकते हुए...'

'अब चिंता नहीं करनी... हम लोग काहे के लिए हैं... समाज सेवा ही तो कर रहे हैं... पुण्य का काम होता है...'

'तो एक पुण्य और कमा लो...'

'पर आज तो संस्कार हो नहीं सकेगा... शाम हो चली है... शाम के वक़्त संस्कार नहीं होता. ऐसा शास्त्रों में लिखा है...' वह आदमी बोलता रहा था.

'मुझे छुटकारा दिलवायें किसी भी तरह, कल का शहर में एक तमाशा बना हुआ घूम रहा हूं... प्लीज... मैं किसी और ज़गह नहीं जाऊंगा... आप कुछ कर सकते हैं तो ठीक... वरना... एक दिन और सही... यातना भोगने को...'

'मेरी बात मानो तो आज की रात ही की तो बात है... हस्पताल की मोर्चरी में लाश को रखवा देते हैं... रातभर आप भी आराम करो... चलो हमारे साथ... ठहरने, खाने पीने का प्रबंध है....'

'अब थानेदार के पास नहीं जाना... भाड़ में जायें ये लोग... कॉर्पोरेशन वाले भी स्साले बहाने कर रहे हैं... क्या हो जाता अगर कोई कारवाई करते....'

'हज़ार-बारह सौ की बात है ना ? हमारी संस्था इसका ज़िम्मा ले रही है... अब किसी के पास नहीं जाना, समझे... हमारे साथ चलो... ठीक ?'

'गाड़ी स्टार्ट करूं... ?'

'देखते क्या हो अब ? कहा ना अब इत्मीनान से हमारे साथ आ जाओ....'

वह गाड़ी में चढ़ गया था, गाड़ी शहर के सरकारी हस्पताल की तरफ दौड़ने लगी थी, उसने बाहर झांका था, शाम गहराने से कुछ दुकानों की बत्तियां जलने लगी थीं. स्ट्रीट लाइट की दूधिया रोशनी भी झरती हुई सड़क पर फैलने लगी थी. उसे अब इस अंधी दौड़ से निजात पाने की समस्त संभावनाएं टिमटिमाते हुए दीपों की तरह लगने लगी थीं. कुछ ही देर के बाद वह उन स्कूटर पर सवार सफ़ेद कपड़ों वाले आदमी के पीछे-पीछे चलते हुए शहर के सिविल हस्पताल तक पहुंच गया था.

बड़े डॉक्टर अपनी सरकारी कोठी में मिल गये थे.

उसने एक काग़ज़ के पुर्ज़े पर कुछ लाइनें उलीकते हुए मोर्चरी के चौकीदार से मिल लेने का आदेश देते हुए, दरवाज़ा बंद कर लिया था. वह समाज सेवी भी उसके साथ ही आ गया था.

'चौकीदार कहां है, मुर्दा घर का... ?' उस समाज सेवी ने शायद किसी वार्ड बॉय से पूछा था.

'सामने वाले चाय के खोखे में देखना था... वहीं होता है इस वक़्त... आप देख आइए वहां...' इतना कहते हुए वह ऊपर सीढ़ियां चढ़ने लगा था.

'उसे कहो कि आसपास ही रहा करे....'

'मैं उसे कहां ढूंढू.. इधर आये तो उसे हिदायत दे देना...'

'कहीं घर तो नहीं चला गया वो...'

'नहीं जी... ड्यूटी होती है उसकी... पर... काम क्या है?'

'एक लाश रखवानी है... डॉक्टर साब ने मार्क कर दिया है.'

'इस वक़्त ?'

'इस काम में वक़्त क्या मायने रखता है... वैष्णोदेवी की यात्रा में मारे लोगों में एक यहां का भी है... लावारिस... कल संस्कार करवायेंगे.... बेचारा जम्मू से आया है यह आदमी... कल से धक्के खा रहा है...' उस आदमी ने उस पर तरस खाते हुए उसका परिचय दिया था.

'पोस्टमार्टम भी तो होगा अभी ?...'

'वहीं वो सब हो गया है... सारी रिपोर्ट इस आदमी के पास हैं... सरकारी ड्यूटी पर है... कल इसे फ़ारिग़ करना है...'

'तो आप चाय के खोखे में देख लें, चौकीदार को... मेरे ख़्याल में वहीं बैठा बीड़ियां फूंक रहा होगा...'

वह भी उस आदमी के पीछे चलते हुए, बाहर आ गया था. चाय के खोखे पर ही मिल गया था वह चौकीदार, बीड़ियों के सुट्टे भरते हुए उसने उसकी ओर ताका था. वह उनके साथ चलने को राज़ी हो गया था.

गाड़ी को उसने मुर्दा घर की तरफ़ मोड़ दिया था. वहां पहले ही शहर के दूसरे समाजसेवी कर्मी मौजूद थे. उसने झट से गाड़ी के पीछे वाला डाला खोल दिया था. एक साथ चार-पांच जने गाड़ी पर चढ़ गये थे, उसे लगा था, अब उसकी दो दिनों वाली यंत्रणा ख़त्म होने वाली है. गाड़ी से जब लकड़ी का बक्सा उतारा था उन समाजसेवियों ने तो उसने इत्मीनान की सांस ली थी.

'अब रात भर कहां रहोगे... हमारे साथ चलो... आराम करो... सवेरे चले जाना... अब चिंता नहीं करनी... आगे काम हमारा है...' उस लीडरनुमा आदमी ने उस पर सहानूभूति प्रकटाते हुए कहा था.

'मैं तो अब सवेरे ही निकलूंगा...' उसने स्वीकृति में कहा था.

'चाय पीते हैं... फिर चलते हैं गीता भवन... वहां कमरे हैं ठहरने को... खाना भिजवा देंगे वहां ही... अब फ़िक्र वाली बात नहीं...'

उसने देखा था, मोर्चरी का चौकीदार हाथ में चाबियों वाला गुच्छा लिये हुए, कंधों पर लाशवाला बक्सा उठाये आदमियों के पीछे-पीछे चल रहा था.

वे लोग भी चाय के खोखे में आ गये थे. चौकीदार भी. सभी चाय पीते हुए, कल सवेरे उस लाश के दाह संस्कार का प्रोग्राम तय करने लगे थे. उसे लगा था, रिश्तेदारों की लड़की की शादी पर वक़्त पर पहुंच जायेगा. अब चाय पीते हुए उसे लगा था कि जैसे उसे राहत मिल गयी हो.

'इस कागज़ पर साइन तो रह गये...' उसने आशंका प्रकटाई थी.

'बोलो कहां करवाने हैं... लाओ...' उस आदमी ने उससे वह कागज़ पकड़ते हुए कहा था.

'नीचे साइन करने हैं... बस... मोहर है तो ठीक... वरना चलेगा...'

'मोहर भी लगा देंगे... घर में पड़ी है... आप अब आराम करो. चलें फिर...' उस आदमी ने उस कागज़ के पुर्ज़े पर 'समाज समिति' की तरफ़ से हस्ताक्षर घसीट दिये थे.

उसने कागज़ का पुर्ज़ा तह करते हुए जेब में डाल लिया था.

'मेरे साथ किसी को बैठा दो गाड़ी में... गीता भवन मैं कहां ढूंढता रहूंगा...'

'मेशी तुम बैठ जाओ ड्राइवर साब के साथ... उस आदमी ने पास ही खड़े एक लड़के को हिदायत दी थी...' देखना कोई तंगी ना आये वहां... कमरा खुलवा देना... खाना मैं भिजवा दूंगा... इतना कहते हुए उस आदमी ने स्कूटर स्टार्ट कर दिया था और वह अब एक क्षण भी वहां नहीं ठहरना चाहता था.

उसकी आंखों में पुलिसकर्मियों का घटिया व्यवहार तैर आया था. कॉर्पोरेशन वालों ने भी उसकी यंत्रणा को नज़रअंदाज ही किया है. उसे सबसे गुस्सा हिजड़ों के प्रमुख पर आया था... जिसने कितनी घटिया हरकत की थी. सबसे बढ़कर उसके दिल में आया था कि अगर ये समाजसेवी लड़के ना मिलते तो वह जाने कहां-कहां और भटक रहा होता अभी. उसके दिल में खुशी की एक हल्की सी लहर दौड़ आयी थी.

उसके सामने फिलहाल मंजिल थी 'गीता भवन'... दूसरी मंजिल थी अपने शहर पहुंचना... फिर घर...फिर... अपनी दुनिया में लौट आना... उसे लगा था, जैसे अपने घर से निकले हुए उसे महीनों हो गये है... इस घटना क्रम में उसकी जेब से चार सौ फ़िज़ूल में खर्च हो गये थे. इसका क्षोभ उसे ज़रूर हुआ था.

उसने जेब टटोली थी, जेब में समाजसेवी मुखिया द्वारा साइन किया हुआ कागज़ सही सलामत था.

लेन-४, रामशरणम् कॉलोनी,
डलहौजी रोड, पठानकोट (पंजाब) - १४५ ००१.

बहुत दिनों के बाद...

सुधीर अग्निहोत्री

बहुत दिनों के बाद
माटी दिखी,
ताल दिखे,
और दिखी
अमवा की छांव.

बहुत दिनों के बाद
नदी दिखी,
नाव दिखी,
और दिखा
मांझी का गांव.

बहुत दिनों के बाद
गोरी दिखी,
गागर दिखी,
और दिखा
घूंघट में चांद.

बहुत दिनों के बाद
खेत दिखे,
रेत दिखी,
और दिखा
हाथी का पांव.

बहुत दिनों के बाद
हाट दिखे,
घाट दिखे,
और दिखा बाट.

बहुत दिनों के बाद
कोयल दिखी,
कूक सुनी,
और दिखा
मोरों का नाच.

बहुत दिनों के बाद
सुग्गा दिखे,
सुग्गी दिखे,
और दिखा
मैकू का चाक.

बहुत दिनों के बाद
डंडा दिखा,
गिल्ली दिखी,
और दिखा
नटखट हनुमान.

बहुत दिनों के बाद
कोई लौटा है गांव.

२०/७२/१, खुशहाल पर्वत, इलाहाबाद-२४० ००३

कहानी

खेल

नरेंद्रकौर छाबड़ा

स्कूल से लौटते ही विकी उत्साह से उछलकर बोला- "मम्मी, मुझे दादी और नानी को गाना सुनाना है आप अभी फ़ोन लगा दो ..." रेणु मुस्करा दी - "ठीक है लगा लेंगे पर पहले मुझे तो सुनाओ वह गाना." विकी मुस्कराते हुए राग में गाने लगा - "तितली उड़ी बस में चढ़ी, कंडक्टर ने कहा आ जा मेरे पास, तितली बोली - चल हट बदमास...." रेणु की बेसाख़्ता हंसी छूट गयी. विकी भी ताली बजाकर हंस रहा है रेणु चूम रही है - "कहां से सीखा यह गाना ?"

"मेरे फ्रेंड ने सिखाया, लालू ने..." विकी उत्साह से भर-भर जाता है - "कैसा लगा आपको ?" "बहुत अच्छा है," रेणु के चेहरे पर ममत्व व गर्व की स्पष्ट छाप दिख रही है. कितनी प्रखर बुद्धि है उनके बेटे की. केवल चार वर्ष की उम्र में ऐसी बुद्धिमानी की बातें करता है कि बड़ों के भी कान काटता है.

अभी परसों की ही तो बात है रेणु ने आलू मेथी की सब्ज़ी बनाई थी. स्कूल से लौटकर खाना खाने बैठे तो विकी ने पूछा- "मम्मा, ये कौन सी सब्ज़ी है ?" रेणु बोली - "ये मेथी की सब्ज़ी है इसको खाने से तुम स्ट्रांग बन जाओगे." एक कौर खाते ही विकी बोला - "मम्मा, ये तो कड़वी है मुझे पसंद नहीं आयी पर मैं खा लूंगा स्ट्रांग बनूंगा ना !" रेणू को बेटे पर इतना प्यार आया कि उसे अपने अंक में भरकर चुंबनों की बौछार कर दी.

वैसे तो आज के युग में सभी बच्चे ऐसी बातें करते हैं कि मां-बाप भौंचक्के रह जाते हैं. वे अपने बाप के भी बाप कहलाते हैं. पता नहीं कहां से इनमें इतनी समझ, इतनी जानकारी व तर्कपूर्ण बातें करने की मेधा व शक्ति आती है, कई बार तो बड़े बुज़ुर्ग इनके सवालों के जवाब देने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं. अक्सर ही बच्चे एक सवाल पूछते हैं - "मैं कहां से आया/आयी ?" तब मां सीधा सा उत्तर दे देती है - "अस्पताल से." ऐसे सवालों से पीछा छुड़ाने के लिए वह विषयांतर करती है, "चलो थोड़ी देर बग़ीचे में खेल आओ." बच्चा पीछा नहीं छोड़ता ... "डॉक्टर के पास इतने सारे बच्चे होते हैं - फिर आप और बच्चे भी ले आओ न मैं उनके साथ खेलूंगा." मां फिर बहाना खोजती है - "तुमने आज पोयम नहीं सुनाई चलो सुनाओ... " बच्चा बहल जाता है और पोयम सुनाने लगता है लेकिन अपने प्रश्नों को मौक़ा मिलते ही फिर दाग़ने लगता है.

रेणु और अतुल की सोच है बच्चों को प्रश्नों को झूठे बहाने से नहीं टालना चाहिए. सही तरीक़े से उनकी सोच व बुद्धि उम्र को देखते हुए उत्तर देना चाहिए. अगर अभिभावक सही मार्गदर्शन नहीं करेंगे तो बाहर से वे ग़लत जानकारी लेंगे जो भविष्य के लिए ख़तरनाक हो सकती है. यही कारण है कि विकी जो भी प्रश्न करता है दोनों उसकी जिज्ञासा शांत करने के लिए यथासंभव प्रयास करते हैं. दोनों ही उसके साथ खेलते भी हैं. उसका होमवर्क भी कराते हैं, उसे कहानियां चुटकुले भी सुनाते हैं जिन्हें वह बड़े ध्यान से सुनता है और याद भी रखता है.

चिड़ियाघर ले जाने पर वे उसे शेर, हाथी, खरगोश, कछुए, हिरण दिखाते हुए उनसे संबंधित कहानियों का ज़िक्र करते जाते हैं. विकी की खुशी, आनंद व उत्साह देखते ही बनता है. शेर को अपनी मांद में हल्की सी दहाड़ करते देखकर विकी कहता है - "लायन, अभी चूहा आयेगा जाल कुतर-कुतर करेगा फिर तुम फ्री हो जाओगे." रेणु अतुल मुस्करा उठते हैं. खरगोश को देखकर वह बड़े आश्चर्य से कहता है - "पापा इसकी आंखें कितनी अच्छी हैं पिंक पिंक, कितना गोरा है व्हाइट व्हाइट." वहीं हाथी को देख कहता है - "यह कितने इयर्स का है ?" जब महावत उसकी उम्र पांच वर्ष बताता है तो वह हैरानी से कहता है - "मैं तो फोर इयर्स का हूं इतना छोटा हूं यह फाइव इयर्स का इतना बड़ा ?" अतुल समझाता है - बेटा, हाथी का शरीर भगवान ने इतना बड़ा ही बनाया है.

मछलीघर में रंगबिरंगी मछलियों को देखकर वह ताली बजाकर नाच उठता है - "मम्मा, देखो वह ऑरेंज फिश कितनी तेज़ दौड़ती है. इनको नींद आती है तो ये कहां सोती हैं ?" रेणु बताती है मछली आंखें खुली रखे हुए इसी तरह पानी में ही सोती है. "उन्हें ठंड नहीं लगती पानी में ?" अनेक प्रश्न हैं उसके दिमाग़ में.

"नहीं." संक्षिप्त सा उत्तर देकर रेणु आगे बढ़ जाती है- "मैंने तुम्हें पोयम सिखाई थी न ..." मछली जल की रानी है, जीवन उसका पानी है, हाथ लगाओ डर जायेगी, बाहर निकालो मर जायेगी." वह पानी में ही रहती है उसे ठंड-गर्मी नहीं लगती."

दोपहर को स्कूल से घर लौटकर जब विकी रेणु खाने से निबट जाते हैं तो घंटा भर बातें, खेल, गपशप चलती है. फिर विकी कुछ देर सो जाता है और रेणु पुस्तकें पढ़ने में लीन हो जाती है. खेल खेल में कई बार विकी रेणु के पेट पर बैठ जाता है. टांगों को घुटनों से मोड़कर उस पर विकी को टिकाकर कभी कभी

रेणु खेल खिलाती है, लोक गीत की पंक्तियां गाते हुए - "झूटे माइयां खीर खंड खाइयां, नानके जाना कि दादके." तो कभी अतुल घोड़ा बनकर उसे कंधे पर बैठा पूरे कमरे का चक्कर लगाता है. विकी की खनकती हंसी पूरे घर में गूंजती है. रेणु-अतुल निहाल हो जाते हैं.

अस्पताल से परीक्षण कराकर रेणु घर लौटी तो उसके चेहरे पर ख़ुशी की चमक थी. वह दूसरी बार मां बनने वाली थी. मन ही मन वह कामना करती थी दूसरी संतान लड़की हो. परिवार पूर्ण हो जायेगा. रात को बातों-बातों में अतुल ने रेणु से कहा- "अब तुम्हें विकी के अजीबोग़रीब सवालों के जवाब देने के लिए तैयार रहना पड़ेगा. पता नहीं किस वक़्त क्या सवाल कर बैठे?' रेणु ने भी सहमति जतायी. रात को सभी बैठकर टी.वी. का कोई सीरियल देख रहे थे. नायिका अचानक उल्टी करने लगी तभी डॉक्टर ने उससे कहा कि वह मां बनने वाली है. कुछ दिनों बाद किसी दूसरे सीरियल में नायिका को उल्टी करते देख विकी झट बोला - "मम्मा, अब इसको भी बच्चा होगा ना." रेणु ने समझाया कभी कभी पेट ख़राब होने पर भी उल्टी होती है. विकी बड़े ध्यान से मां की बातें सुनता रहा.

रेणु और विकी गपशप में लगे थे. तभी विकी रेणु के पेट पर बैठने लगा. रेणु ने रोकते हुए कहा - "बेटा, मेरे पेट में दर्द है यहां नहीं पलंग पर बैठो." विकी मान गया. अगली बार जब रेणु ने फिर मना किया तो विकी ज़िद करने लगा - 'रोज़-रोज़ आपके पेट में दर्द होता है क्या ? मुझे यहीं बैठना है.' बड़ी मुश्किल से रेणु उसे समझा पायी और उसका ध्यान हटा पायी. अब तो वह इसी सोच में पड़ी थी कि विकी की तमाम बाल सुलभ परेशानियां, जिज्ञासाओं को कैसे हल करना है.

रेणु के पेट का उभार जब स्पष्ट नज़र आने लगा तो एक दिन विकी उसके पेट पर धौल जमाते हुए बोला - "मम्मा, ये आपकी टमी को क्या हो गया है, इतना मोटा कैसे हो गया ?" रेणु ने अब और टालना उचित नहीं समझा. उसे पास बैठाकर समझाने लगी - "बेटा, इसमें एक छोटा बेबी है जो तुम्हारे साथ खेलेगा." विकी की आंखें आश्चर्य से फैल गयीं - "छोटा बेबी बाहर कब आयेगा दिखता तो है नहीं."

"फोर मंथ्स के बाद आयेगा अभी बहुत छोटा है न..."

"बाहर कैसे निकालेंगे ?" उसकी उत्सुकता चरम पर थी.

"डॉक्टर अंकल हैं न वही निकालते हैं. अच्छा चलो अभी दूध का टाइम हो गया है दूध पी लो..." रेणु ने बात बदली.

"दूध.... मैं कोई बिल्ली हूं.... मुझे दूध नहीं पीना...." टी. वी. की विज्ञापनी भाषा बोलते हुए विकी ने अभिनय भी किया तो रेणु ने चाकलेट पाउडर डालकर दूध का कप थमाया. विकी फ़ौरन गटागट पी गया.- "अब मैं कितना स्ट्रांग बन गया हूं..." अपनी बांहों को फैलाकर वह दिखाता है.

नरेंद्र कौर

२ अक्तूबर १९५०;
विज्ञान स्नातक

लेखन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ५०० से अधिक रचनाएं प्रकाशित जिनमें ७० से अधिक कहानियां हैं. शेष में लेख, लघुकथाएं, साक्षात्कार व अन्य फीचर हैं. स्थानीय 'लोकमत समाचार' में ७ वर्षों तक फीचर संपादन का कार्य. ५ वर्षों तक इस अख़बार में साप्ताहिक स्तंभ 'बातचीत' प्रकाशित.

प्रकाशन : तीन कहानी संग्रह व एक लघुकथा संग्रह प्रकाशित. एक पंजाबी कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन.

पुरस्कार : प्रथम कहानी संग्रह 'मेरी प्रतिनिधि कहानियां' को हिंदीतर भाषी पुरस्कार स्व. राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा द्वारा. स्थानीय देवगिरी समाचार पत्र द्वारा उत्कृष्ट फीचर लेखन पुरस्कार. स्वदेश (इंदौर) कहानी प्रतियोगिता में १९९५ तथा १९९७ में प्रथम पुरस्कार. शुभतारिका द्वारा कुछ लघुकथाएं पुरस्कृत. २००१ व २००२ में, दिल्ली प्रेस अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में कहानी पुरस्कृत. अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित.

अन्य : कुछ कहानियों का पंजाबी, मराठी, गुजराती व तमिल में अनुवाद. आकाशवाणी से कहानियों का नियमित प्रसारण. दूरदर्शन कार्यक्रमों में भी शामिल. वर्ष १९९६ में स्थानीय आर्ट गैलरी में चित्रों (पेंटिंग) की एकल प्रदर्शनी आयोजित.

संप्रति : लेखन, स्वतंत्र पत्रकारिता व समाजसेवा.

अब अक्सर विकी पूछता है - "छोटा बेबी क्या खाता है उसे भूख नहीं लगती ? वह सोता कब है ? वह अंदर क्या करता है ? मुझे देखना है..." रेणु गर्भस्थ शिशु की हलचल करने पर विकी का हाथ पेट पर रख देती है... "देखो, बेबी खेल रहा है न...?" विकी की आंखों में चमक आ जाती है. हां, वो अकेला ही खेल रहा है. डॉक्टर अंकल को बोलो बेबी को जल्दी बाहर निकालो फिर मैं उसके साथ खेलूंगा. रेणु ममत्व से लबालब भरे हृदय से अपने होनहार बेटे को निहारते हुए मुस्करा देती है.

❐

अस्पताल में रेणु अपनी नवजात बेटी के साथ लेटी है. अतुल विकी का हाथ पकड़कर कमरे में लाया - "देखो बेटा, तुम्हारी बहन..." विकी सीधा रेणु के पास गया, ... " मम्मा, बेबी बाहर आ गया अब तो आपका पेट नहीं दुख रहा न ? मैं अब उस पर बैठ सकूंगा न ?" रेणु ने उसे चूम लिया. "हां बेटा, अब मैं बिल्कुल ठीक हूं. देखो तुम्हारी छोटी बहन कैसी है ?" विकी एकटक उसे देखता है फिर एकदम ज़िद के अंदाज़ में कहता है... "मुझे यहां सोना है आपके साथ बेबी को हटाओ..." अतुल उसे बहलाकर बाहर ले जाता है.

रेणु अब बेटी की सार संभाल में व्यस्त है विकी में चिड़चिड़ापन व ज़िद्दीपन आ गया है. कभी वह बहन का हाथ खींचता है कभी चिकोटी काटता है उसके रोने चीखने पर प्रसन्न होकर हंसता है. अतुल-रेणु बच्चे का मनोविज्ञान समझते हैं. अपनी ओर ध्यान केंद्रित करने के लिए वह ऐसी हरकतें करता है. यह अस्थायी है. बेटी के बड़े होते ही सब सहज हो जायेगा.

सलोनी अब तीन वर्ष की हो गयी है. सात वर्ष का विकी अब उसे बड़ा स्नेह व प्यार करता है. उसे उठाकर कमरे में चक्कर लगा लेता है. उसके साथ खेलता है, बातें करता है. वह भी, "भैया भैया" कहती उसके आगे-पीछे दौड़ती रहती है.

अतुल-रेणु ने अब बच्चों के लिए अलग कमरे की व्यवस्था कर दी है. वहीं उनके कपड़े, पढ़ाई के टेबल कुर्सी, क़िताबें, खिलौने और पलंग रखे गये हैं. रात को दोनों बच्चों के साथ कुछ देर हंसी मज़ाक करते हैं, खेल खेलते हैं. फिर होती है कहानी ... कभी रेणु सुनाती है तो कभी अतुल. जिसमें दोनों भाई बहन सवाल पूछते रहते हैं. और बड़े धैर्य से पति-पत्नी को उनके जवाब देने पड़ते हैं. अंत में प्रार्थना और गुड नाईट होता है. दोनों बच्चों को उनके कमरे में सुलाकर ही रेणु अपने कमरे में आती है.

सोते हुए एक दिन विकी की अचानक नींद खुली. प्यास लगी तो पानी मांगने मम्मी-पापा के कमरे की ओर गया. दरवाज़ा उड़का हुआ था. हल्के से धक्के से खुल गया. अंधेरे में ही आंखें मलते हुए उसने मम्मी-पापा को देखा, आलिंगन बद्ध, अंतरंग अवस्था में. घबराते हुए केवल - "मम्मा, पानी..." ही कह सका. पति-पत्नी क्षणांश में ही सहज होने की प्रक्रिया में जुट गये.

"बेटा तुम चलो अपने कमरे में अभी पानी लाती हूं..." रेणु के भीतर व्यर्थ का अपराध बोध पैदा हो गया था. शर्म, संकोच अलग परेशान कर रहे थे. विकी को पानी पिलाकर वह वापस लौटी तो अतुल भी जाग रहा था.

"अतुल, विकी ने इस हालत में हमें देख लिया है मुझे तो बेहद तनाव हो रहा है. अगर उसने इस बारे में सवाल किये तो क्या जवाब दूंगी ? और वह पूछेगा ज़रूर क्योंकि उसका स्वभाव ही है अपने कौतूहल व जिज्ञासा का हल हमेशा वह चाहता है."

"क्या कर सकते हैं ? हां.... कह देना हम एक खेल खेल रहे थे...." अतुल ने सुझाया.

वही हुआ जिसकी आशंका थी. अगले दिन स्कूल से लौटकर खाना खाकर सलोनी के साथ खेलते-खेलते अचानक वह उठा और पत्रिका पढ़ती रेणु के समीप आया - "मम्मा, कल रात को आप और पापा क्यों लड़ रहे थे ?" रेणु सकपका गयी. फिर तनिक संभलकर उसने कहा - "बेटा लड़ नहीं रहे थे, हम एक खेल खेल रहे थे."

"फिर पापा ने आपको काटा क्यों ?"

रेणु के शरीर में झुरझुरी हो आयी... "बेटा, कुछ नहीं हुआ. जब तुम बड़े, हो जाओगे न पापा जितने, फिर सब समझ जाओगे. अभी जाओ सलोनी के साथ खेलो...." रेणु ने सिर पकड़ लिया.

जाते जाते विकी बोला - "जब मैं पापा जितना बड़ा हो जाऊंगा तब मेरी शादी हो जायेगी फिर मैं भी ऐसा खेल खेलूंगा...?"

रेणु को लगा सारा आसमान घूम रहा है आखों के आगे अंधेरा छा गया है, दिमाग सुन्न हो रहा है. अतुल को जब सारा क़िस्सा सुनाया तो वह बोला - "तुम बेकार ही तनाव पाल रही हो. बच्चे ऐसी बातें जल्दी ही भूल जाते हैं. परेशान होने की ज़रूरत नहीं." रेणु सोचती है क्या कहने मात्र से या दिलासा देने से समस्या का समाधान हो जाता है ? नयी पौध की उन उत्सुकताओं, जिज्ञासाओं का कैसे समाधान किया जाये जिन्हें जानने की अभी उनकी उम्र ही नहीं है. इस कच्ची उम्र में उनकी निरीक्षण शक्ति इतनी मजबूत है जिसे आसानी से बहलाया नहीं जा सकता.

कुछ दिन इसी कशमकश में कटे.

और एक दिन जब शाम को रेणु बच्चों के कमरे में आयी तो देखा विकी सलोनी के कपड़े उतार रहा है. पलभर को वह चौंकी फिर कुछ रोष से चीख़ी.... "विकी, क्या कर रहे हो ? सलोनी के कपड़े क्यों उतारे...?"

विकी ने सहमते हुए रेणु को देखा फिर अटकते अटकते बोला... "मम्मा वही वाला खेल... जो आप और पापा....".

✍ १८४ सिंधी कॉलोनी,
जालना रोड, औरंगाबाद - ४३१ ००५.

कहानी

एक थी सांवली

"सांवली ने आत्महत्या कर ली..." यह ख़बर जैसे ही मुंशी काका ने मुझे सुनायी, मेरे पैरों तले की ज़मीन खिसक गयी. मैं हैरानी की अवस्था में बुदबुदायी, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता !"

"ऐसा ही हुआ है, दुल्हन जी..." मुंशी काका ने अपनी ऐनक को कुर्ते से साफ़ करते हुए कहा, "जोशी साहब आये थे, अपनी ज़मीन-जायदाद सलटाने. कह रहे थे कि इस गांव से हमेशा के लिए रिश्ता ख़त्म करने आये हैं....! मालिक साहब ने कहा भी कि सांवली तो रही नहीं, अब गांव वापस क्यों नहीं आ जाते...? तो दुःखी स्वर में बोले, सांवली के क़ातिल इस गांव में रहने से बेहतर तो मैं मर जाना पसंद करूंगा... और.... "

"मुंशी काका... इधर आइए... " कामेश ने आवाज लगायी तो मुंशी काका बात को अधूरी छोड़ उधर लपक लिये और मैं... मैं तो अभी भी सकते की अवस्था में खड़ी अपने आप से कह रही थी कि नहीं, ऐसा नहीं हो सकता. सांवली ऐसा नहीं कर सकती... कभी नहीं कर सकती...

'ऐसा ही हुआ है बहुरानी जी....' मुंशी काका की आवाज़ एक बार फिर से कानों में गूंजी और मैं धड़ाम से सोफे पर ढह गयी...

सामने सांवली खड़ी है - हंसती, मुस्कराती, बात-बात पर 'भाभी-भाभी' कह गले से लिपट जाने वाली. शुरू-शुरू में साधारण शक्ल-सूरत वाली सांवली की यह बेतकल्लुफ़ी मुझे ज़रा भी रास नहीं आयी, लेकिन धीरे-धीरे वह मेरे अंतर्मन में ऐसे उतर गयी कि उससे बिना मिले एक दिन भी गवारा नहीं रहा मुझे. वैसे भी गांव में ऐसा था ही क्या मन बहलाने को.... ? कहीं आना नहीं, कहीं जाना नहीं, बस दिन भर कमरे, आंगन और किचेन में अपनी दुनिया ढूंढ़ना. नयी-नयी शादी और उस पर से यह वीरानी, अब सासू मां से कोई कितनी बात करे... ? कामेश को तो वैसे भी कंपीटिशन की तैयारी से फुरसत नहीं थी. वे तो महीने में बमुश्किल दो या तीन दिनों के लिए ही गांव आ पाते थे. बस, ले-देकर एक सांवली ही बची थी, मेरे अकेलेपन की साथिन... !

सांवली की मां हमारे यहां मिसरानी का काम करती थी. खाना बनाने के अलावा तीज-त्योहार में गीत गाना... मेंहदी लगाना... गांव, घर के किसी उत्सव पर न्योता दे आना आदि सारे काम उन्हीं के ज़िम्मे रहते. सांवली के बाबूजी हमारे ख़ानदानी जोशी थे. सांवली, अपनी मां के साथ सुबह ही आ जाती. थोड़ी देर अपनी मां की मदद करती फिर मेरे पास आ बैठती. मैं चुप भी रहती तो बोलती रहती. दुनिया भर की ताज़ातरीन ख़बरों का भंडार रहता उसके पास. फिल्मी बातों में तो उसकी जान पड़ी रहती. किस हीरो के साथ किस हिरोइन का चक्कर चल रहा है, किस हीरो ने कौन सी फिल्म साइन की है, कौन सी नयी फिल्में आने वाली हैं... और जो आयी हैं वे मार्केट में कैसा व्यापार कर रही हैं - सारी बातें वह मुझे ऐसे बताती जैसे यह सब उसकी आंखों के सामने से गुज़रा हुआ सच हो. शायद कोई फिल्म समीक्षक भी किसी फिल्म की इतनी अच्छी समीक्षा नहीं कर सकता था. कम से कम मुझे तो ऐसा ही लगता. उमर यही कोई बीस-बाइस की होगी और बातें ऐसी करती, जैसे कितनी बड़ी हो. कभी-कभी तो वह मुझे ही किसी बात पर शिक्षा देने लगती. मुझे उसकी बातें सुनकर हंसी आती तो कभी गुस्सा भी आ जाता... और फिर वह जब तक मुझे मना नहीं लेती मेरे पीछे लगी रहती...

संगीता आनंद

सांवली की मां को उन दिनों सांवली की बहुत चिंता रहने लगी थी. कई जगहों से लड़केवाले देखने आये परंतु बात नहीं बन पायी. कहीं बात पैसों पर अटक जाती तो कहीं शक्ल-सूरत पर... सांवली का पक्ष दोनों ही तरफ़ से कमज़ोर था. बार-बार ना सुनने के कारण सांवली कुछ उखड़ी-उखड़ी सी रहने लगी. मुझसे कोई और बात कहती-कहती अनायास कह उठती, "अब मैं सुंदर नहीं तो इसमें मेरा क्या दोष... ? मैंने ख़ुद तो अपने आप को नहीं बनाया न... ? भगवान ने मुझे कुरूप ही बनाया तो मां मुझे क्यों कोसती है... ? हर वक़्त के ताने ! सच, मैं तंग आ गयी हूं रोज़-रोज़ की नुमाइश एवं मां के ज़हर बुझे तानों से..."

"सांवली, ऐसा नहीं कहते... आख़िर वह तुम्हारी मां है ! तुम्हारी चिंता रहती है उन्हें....." मैं उसे समझाती तो वह तुनक कर कहती, "इसीलिए घर से निकालने के लिए इतनी बेचैन रहती है. बाबूजी ठीक हैं.... समय आने पर सब कुछ ठीक हो जायेगा. पर मां...." आवेश की शिद्दत से उसके होंठ भिंच जाते. आंखों में अनायास आये आंसुओं को रोकने के क्रम में वह आसमान की ओर देखने लगती, जैसे कह रही हो कि काश ! इस आसमान की तरह मेरी मां का दिल भी बड़ा होता...

इधर कुछ दिनों से सांवली में अचानक कुछ परिवर्तन होने लगे. पहले की तरह अब वह ज़्यादा मेरे पास नहीं बैठती और

जब जाने लगती तो कहती, "मां पूछे तो बोलिएगा कि कमला के यहां गयी हूं...." शुरू-शुरू में तो मैंने ध्यान नहीं दिया, लेकिन एक दिन मिसरानी काकी को जब यह बड़बड़ाते हुए सुना, "पता नहीं आजकल कमला के यहां इसे क्या मिलने लगा है... ? पहले तो उसका नाम भी नहीं सुहाता था इस लड़की को... "तो मैं सोचने पर मजबूर हो गयी. मैंने उस पर ध्यान देना शुरू कर दिया. सांवली वास्तव में बदल गयी थी. हमेशा साधारण वेश भूषा में रहने वाली लड़की अब बनाव-श्रृंगार करने लगी थी. मैं पूछती, "यह ड्रेस तुमने कहां से ली... ?" तो कहती कि कमला की है. उसकी बातों पर विश्वास नहीं करने का कोई कारण भी नहीं था. लेकिन एक दिन मिसरानी काकी के सामने ही मैं जब एक क़मीज़-सलवार के लिए पूछ बैठी तो वह गड़बड़ा गयी. मिसरानी काकी हैरानी की अवस्था में बोली, "सांवली तो कह रही थी कि आपने इसे दिया है." अपनी मां की बात सुनकर सांवली के चेहरे का रंग उड़ गया. मैंने स्थिति को संभालने हेतु उस वक़्त तो कह दिया कि मेरे ध्यान से उतर गया था, मैंने ही इसे दिया है. लेकिन अकेले में मैंने उसे झूठ बोलने के लिए ख़ूब डांटा और उससे कहा कि सच-सच बताओ कि यह क़मीज़-सलवार कहां से लायी.... ? काफी देर डराने-धमकाने और किसी से न कहने की क़सम खाने पर उसने जो बताया सुनकर मेरे तो होश ही उड़ गये. मैंने क़सम खायी थी कि किसी को कुछ नहीं बताऊंगी, परंतु यह बात मिसरानी काकी से नहीं बताना भी ठीक नहीं था. मैंने कहा, "सांवली, मैंने क़सम तो खायी है परंतु इतनी बड़ी बात मैं मिसरानी काकी से नहीं छुपा सकती. सच, मैं तो सोच भी नहीं सकती थी कि तुम इतना ग़लत क़दम उठाओगी..."

'भाभी, मैं जानती हूं कि यह ग़लत है ! परंतु मेरी चिंता में मेरे मां-बाप दिन रात घुलें क्या यह ठीक है... ? भाभी, मुझे तनाव रहता है. लगता है कि मेरे कारण ही मेरे बाबूजी को लड़के वालों के पैर पकड़ने पड़ते हैं.... उनकी ख़ुशामद करनी पड़ती है.... मन तो करता है कि आत्महत्या कर लूं... ! परंतु एक तो हिम्मत नहीं होती, दूसरे जानती हूं कि यह पाप होगा...."

"तो किसी अन्य जाति के लड़के के साथ संबंध रखना क्या पाप नहीं है ? मैंने आक्रोश में कहा, 'और तुम क्या समझती हो कि तुम्हारे इस फैसले से तुम्हारे मां-बाप ख़ुश हो जायेंगे. सांवली तुम्हारे जज़्बात मैं समझती हूं, परंतु तुमने यह जो क़दम उठाया है वह ग़लत ही नहीं, हमारे समाज के विरुद्ध भी है. अगर तुम्हारी इस प्रेम कहानी की किसी को भनक भी लग गयी तो तुम जानती हो कि क्या होगा... ? तुम्हारें मां-बाप मुंह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहेंगे और.... ' मैं आवेश से कांपने लगी थी. परंतु मेरे आवेश से बिना प्रभावित हुए सांवली बोली, "भाभी मैं उससे प्यार करती हूं और वह भी मुझे प्यार करता है. वैसे भी वह और उसके बाबूजी बिना दहेज़ के मुझे अपनाना चाहते हैं. फिर क्या फ़र्क़ पड़ता है कि वह ग्वाला जाति का है.... ?

संगीता आनन्द

एम. ए. (हिंदी)

लेखन : *'हंस,' 'वागर्थ,' 'अक्षरा,' 'कथाबिंब' आदि पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित. एक कथा-संग्रह शीघ्र प्रकाश्य.*

संप्रति : *पटना से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका* ***'वर्तमान संदर्भ'*** *का संपादन.*

"बहुत फ़र्क़ पड़ता है... ! अरे पगली, यह फिल्म नहीं वास्तविक ज़िंदगी है. यहां जात-पांत, अमीर-ग़रीब, ऊंच-नीच सब बहुत मायने रखते हैं. देखो, मैं तो कहूंगी कि तुम उसे भूल जाओ और इंतज़ार करो, भगवान सबके लिए जोड़ी बनाकर भेजता है..."

"शायद मेरी जोड़ी उसी के साथ लिखी हो..." सांवली की गहरी काली आंखों में तैरते हुए सपनों के नन्हें-नन्हें बादल उस वक़्त मैंने दिल से महसूस किये थे. लेकिन उसके बावजूद मुझे सांवली की यह बात अच्छी नहीं लगी. क्योंकि मेरा परिवेश ही ऐसा रहा कि प्यार-व्यार जैसी बातें सोचकर भी दहशत होती है. मुझे अच्छी तरह याद है, वह मेरा कॉलेज में पहला दिन था. मैं तैयार होकर भगवान के मंदिर में प्रणाम करने गयी थी. टीका लगाते वक़्त मां ने कहा था, "तुम्हारा विश्वास कर तुम्हें लड़कों के साथ पढ़ने भेज रहे हैं. पर याद रखना, जिस दिन तुमने हमारें विश्वास को धोखा दिया, उस दिन तुम रहोगी या मैं...." मैंने सहम कर सांवली से कहा, "सांवली, मुझे माफ़ करना. कुछ ऊंच-नीच हो जाये इससे पहले ही मुझे यह बात मिसरानी काकी को...."

"नहीं भाभी नहीं, आप ऐसा नहीं कर सकतीं..." उसने स्थिर स्वर में कहा, "यह बात आपके और मेरे बीच ही रहेगी. आपने क़सम खायी है, जिस दिन आपने अपनी क़सम तोड़ी, उसी दिन मेरा मरा मुंह देखेंगी...."

"सांवली... " मेरी आवाज़ कांप गयी.

"हां भाभी, मैं समय आने पर यह बात ख़ुद घर में बता दूंगी." इतना कहकर वह भागती चली गयी.

उसके बाद वह दो-तीन दिनों तक नहीं आयी. मैंने मिसरानी काकी से पूछा तो उन्होंने बताया कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है. सुनकर मेरे अंदर अजीब-अजीब से ख़्यालात मंडराने लगे. सच

पूछिए तो उस वक़्त मेरी मानसकिता बहुत कुंठित हो गयी थी. मन में आया कि कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं हो गयी है. मैं मिसरानी काकी से बार-बार पूछ रह थी कि उसे क्या हुआ है... ? पर काकी यह कहकर बात टाल गयी कि उसके पेट में दर्द है.

पंद्रह दिन हो गये सांवली नहीं आयी. मेरे अंदर सांवली को लेकर अजीब चिंता घर कर गयी. कई बार मैंने मिसरानी काकी से कहा भी कि सांवली को बस थोड़ी देर के लिए ही भेज दे. परंतु काकी ने कोई न कोई बहाना बना दिया. एक दिन मैं सासू मां से ज़िद करके सांवली को देखने चली गयी. सांवली, मसाला पीस रही थी. मुझे देखते ही हैरत में भरकर बोली, "भाभी आप.... ? और यहां... ?"

"हां, मैं यहां.... ! तुम बहुत दिनों से नहीं आयी तो सोचा मैं ही मिल लूं तुम से. वैसे आजकल तुम आ क्यों नहीं रही हो...?" मैंने पलंग पर बैठते हुए पूछा.

"बस, मन नहीं करता..." सांवली के शब्दों से असीम वेदना टपक रही थी. एक गहरी निराशा... ! जैसे अनायास मौसम ने करवट ली हो और पतझड़ अपने पूरे आवेग के साथ उस पर हावी हो गया हो. मैंने सांवली का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया और कहा, "सांवली, बहुत उदास लग रही हो... ? कुछ हो गया है तुम्हें... ?"

"काश ! कुछ हो जाता...." उसकी ठंडी आह हवा तक को सर्द कर गयी, "भाभी, भगवान से मना रही हूं कि कुछ हो जाये मुझे... लेकिन भगवान ने मेरी कभी सुनी है जो अब सुनेगा! उसे तो बस एक बार हम जैसों की तक़दीर लिखनी है, उसके बाद उसे फ़ुरसत कहां यह देखने की कि उसकी लिखी तक़दीर से किसी को कितने आंसू बहाने पड़ रहे हैं.... !" उसने अपनी आंखों से टपक आये आंसू पोंछे थे और कुछ पलों तक थमकर फिर बोली थी "आपने ठीक ही कहा है भाभी कि यह फिल्म नहीं, वास्तविक ज़िंदगी है ! यहां जात-पांत, अमीर-गरीब, ऊंच-नीच सब कुछ बहुत मायने रखते हैं...." बोलते-बोलते सांवली को ठहर जाना पड़ा, क्योंकि मिसरानी काकी आ गयी थी. चाय पीने के बाद मुझे सांवली के कहे शब्दों के अर्थ तलाशते हुए लौट आना पड़ा.

उसके बाद दो तीन दिन व्यस्तताओं में बीते, क्योंकि कामेश की परीक्षाएं ख़त्म हो गयी थीं और वे अगले सप्ताह ही लौटने वाले थे. सासू मां उनके लौटने की ख़ुशी में उनके पसंद के पकवान बनाने में लगी हुई थीं. वह मुझे भी लगाये रखतीं ताकि मैं यह सब सीख सकूं और उनके साथ बाहर रहने पर उन्हें ये पकवान बनाकर खिला सकूं.

कामेश दो-तीन महीने रहे. इसी बीच मुझे पता चला कि सांवली अपनी दीदी के यहां चली गयी है. कामेश की उपस्थिति में सांवली का ख़्याल कम ही आया इन दिनों. कामेश का रिजल्ट आया वे 'कमीशन' पास कर गये थे. ट्रेनिंग के बाद बतौर एक रजिस्ट्रार इनकी नौकरी जमशेदपुर हो गयी. मैं इनके साथ जमशेदपुर चली गयी. सब कुछ इतनी जल्दी और व्यस्तताओं के बीच हुआ कि और किसी चीज़ का ध्यान ही नहीं रहा. वैसे भी छह महीनों से सांवली अपनी दीदी के यहां गयी हुई थी तो उसके विषय में कुछ नया जानने की गुंजाइश ही नहीं बची थी.

इनकी नौकरी लगने के बाद तीन महीनों तक गांव से हमारा संपर्क लगभग ख़त्म ही रहा. इनकी नौकरी के लिए सासू मां ने मन्नत मांगी थी, इसलिए वे ससुर जी के साथ तीर्थ चली गयी थीं, वहां से अपने पीहर. अगहन के बाद हमारे मुंशी जी जब अनाज लेकर आये तो मैंने अनायास सांवली की चर्चा छेड़ दी. सुनते ही उन्होंने आह भरते हुए कहा था, "उसकी शादी हो गयी दुल्हन जी.."

"कब और किससे... ? मैंने सुखद आश्चर्य से पूछा."

"क़रीब महीने भर पहले, एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति मुरली के साथ. मिसरानी जी के भाई ने यह संबंध बतलाया था. पहले भी उसकी दो शादियां हो चुकी थीं. पहली अस्थमा से मर गयी और दूसरी ने आत्महत्या कर ली. सुना है कि दूसरी के लक्षण ठीक नहीं थे. मुरली ने रंगे हाथों पकड़ लिया था इसलिए...! अब क्या सच है, क्या झूठ यह तो मैं नहीं जानता दुल्हन जी, परंतु इतना पता चला है कि सांवली अपने ससुराल में ख़ुश नहीं है. सुना है, उस व्यक्ति के चाल-चलन भी ठीक नहीं हैं."

"क्या जोशी काका और मिसरानी काकी ने शादी से पहले कुछ पता नहीं लगाया था ?"

"पता नहीं दुल्हन जी... ! यह शादी इतनी जल्दी और गुपचुप तरीके से हुई कि मालिक साहब को भी पता नहीं चला. शादी के बाद जब मिसराइन जी मिठाई देने आयी तो मालूम पड़ा. मालकिन जी ने तो शिकायत भी की परंतु उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि सब कुछ इतनी जल्दी में हुआ कि किसी को बताने का मौक़ा नहीं मिला."

"क्या उस व्यक्ति को पहले से बच्चे भी हैं.... ?"

"एक था, दूसरी के गर्भ से हुआ था. मरते वक़्त उसने उस बच्चे को भी ज़हर खिला दिया."

"ओह नो.... !" अजीब सी तड़प महसूस की मैंने उस बच्चे के लिए. सांवली के लिए भी दुःख हुआ. वैसे भी एक जवान औरत एक अधेड़ व्यक्ति के साथ कैसे ख़ुश रह सकती है भला...? फिर मुंशी जी के अनुसार उसके चाल-चलन भी तो अच्छे नहीं हैं. ओह! यह सांवली के साथ अच्छा नहीं हुआ. मैं कई दिनों तक सांवली के लिए सोचती रही थी.

❑

मेरी ननद को लड़का हुआ था. बाबूजी एवं सासू मां आयी थीं, ख़रीददारी करने के लिए. एक रात खाना खाने के बाद मैंने सांवली की चर्चा छेड़ दी. सुनकर सासू मां का स्वर थोड़ा उदास हो गया. उन्होंने कहा, "तुम्हें तो पता ही होगा कि उसकी शादी हो गयी है....?"

"हां.... मुंशी जी ने बताया था...."

"उसका पति ठीक नहीं निकला. शराब तो पीता ही है, दूसरी औरतों से भी उसके संबंध हैं."

"यह बात सांवली ने बतायी....?"

"नहीं, खुद मिसरानी जी ने ! उसके भाई ने अपने स्वार्थ के लिए सांवली की बलि चढ़ा दी. वह वहीं उनके यहां काम करता है. चूंकि उसके आगे पीछे कोई नहीं, इसलिए उसने सोचा कि सांवली की शादी उससे कर देने पर उसकी सारी संपत्ति उसे मिल जायेगी.. यह बात एक दिन ख़ुद मिसरानी जी ने अपने भाई के मुंह से सुनी. उसके बाद मिसरानी जी और उनके भाई में बहुत बहस हुई. ख़ैर, होनी को नमस्कार है ! लेकिन मुसीबत यहीं ख़त्म नहीं हुई. सांवली अपने पीहर आयी थी, दो-चार दिनों के लिए, एकदम उदास और ख़ामोश सी. किसी से नहीं बोलने की जैसे उसने क़सम खायी थी. मैंने जब कई बार उससे पति के विषय में पूछा तो बड़ी मुश्किल से बोली, ईश्वर ने जो लिख दिया नसीब में, उसके प्रति असंतोष करने से तकलीफ़ बढ़ती है... जो जैसा है, ठीक है."

सांवली की समझदारी देखकर मैंने मिसरानी जी से उसकी प्रशंसा की थी. सुनकर मिसरानी जी अपनी ही रौ में बोली, "वास्तव में सांवली तो समझदार ही है ! परंतु उस लड़के का क्या करूं, जो हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गया है."

"कौन सा लड़का...?" मैंने पूछा तो मिसरानी जी बात टाल गयी. लेकिन मुझे क्या पता था कि सांवली का चक्कर पहले कहीं और था. उसी शाम सांवली के घर के बाहर किसी लड़के की ज़ोर-ज़ोर से बोलने की आवाज़ सुन, मैंने झरोखे से देखा, वह रामदीन खटाल वाले का बेटा था. वह आक्रोश में बोल रहा था कि सांवली ने उसे धोखा दिया है. पूरे मुहल्ले में खुसर-फुसर होने लगी. लोग जमा होने लगे. शर्मा जी उस वक़्त किसी जजमान के यहां गये हुए थे. मिसरानी काकी दौड़ी-दौड़ी आयी और मुझसे कहने लगी कि मैं कुछ करूं. मेरी तो ख़ुद कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है....? तुम्हारे ससुरजी ने कहा, पहले तो यह पता लगना चाहिए कि वास्तव में सांवली का उस लड़के से संबंध है भी या नहीं...?

मिसरानी काकी ज़िद करने लगी कि यह लड़का झूठ बोल रहा है. परंतु सोचने वाली बात यह थी कि किसी लड़के में इतनी हिम्मत कहां से आयेगी कि सरेआम वह किसी शरीफ़ लड़की पर लांक्षन लगा दे.... ? सासू मां पल भर को रुकी थीं. मेरा कलेजा धक्क-धक्क करने लगा कि कहीं सासू मां को पता चल गया कि मैंने सांवली के प्रेम के विषय में जानते हुए भी सब लोगों से छुपाया था, तो क्या होगा... ? सासू मां ने आगे कहा, "पूरे गांव में यह ख़बर फैल गयी. सांवली रो-रोकर बेहाल थी. मैं और तुम्हारे ससुर जी उससे पूछ-पूछ कर परेशान थे कि सच क्या है ? पर वह कोई जवाब ही नहीं दे रही थी. अख़िरकार बात पंचायत तक पहुंच गयी. पंचायत ने उस लड़के को बहुत धमकाया, पर वह लड़का अपनी बात पर अड़ा रहा. सांवली से पूछा गया, पर उसने न हां कहा और न ना....! जोशी जी ने पंचों के सामने अपनी इज़्ज़त की दुहाई देते हुए किसी तरह उन्हें विश्वास दिलाया कि सांवली निर्दोष है....!"

ख़ैर, किसी तरह इधर-उधर कर मामला सलटा. दूसरे दिन तुम्हारे ससुर जी ने दलाल से टिकट की व्यवस्था करवाई और जोशी जी सांवली को लेकर मुंबई रवाना हो गये. लेकिन वाह री किस्मत ! वहां उसके पहुंचने से पहले ही उसकी बदनामी पहुंच गयी. सांवली के पति ने उसे रखने से इंकार कर दिया. काफी मिन्नत के बाद वह इस शर्त पर तैयार हुआ कि अब सांवली कभी अपने पीहर नहीं जायेगी. दिल पर पत्थर रखकर जोशी जी लौट आये.... सासू मां बोलते-बोलते फिर ठहरीं तो अपने विचारों में भटकती हुई मैं सोचने लगी, "छीः, ख़ुद चरित्रहीन होकर अपनी पत्नी के सती-सावित्री होने की परिकल्पना करता है..! उसे घर से निकालने की धमकी देता है... !! ऐसे व्यक्ति को तो ऐसी सज़ा मिलनी चाहिए कि उसकी रूह कांप जाये...." सोचते हुए मन वितृष्णा से भर गया. मैंने सासू मां से पूछा, "उस लड़के का क्या हुआ मां... ?"

"पता नहीं...." सासू मां ने ठंडी सांस भरी, "लेकिन लोग कहते हैं कि वह उसी दिन गांव छोड़कर चला गया. रामदीन अपने बेटे के भाग जाने से बहुत दुःखी हुआ. वह जब तब सबसे कहने लगा कि शर्मा जी की बेटी के कारण उसके बेटे की ज़िंदगी बर्बाद हो गयी...."

"आपको क्या लगता है मां.... क्या सांवली का वास्तव में उससे संबंध था...? मुझे तो लगता है कि वह लड़का ज़रूर झूठ बोलता होगा..." मैंने अपने द्वारा छुपाये हुए सच की थाह लेनी चाही.

"पहले तो हमें भी लगा कि वह लड़का झूठ बोल रहा होगा. लेकिन एक दिन बातों ही बातों में मिसरानी जी ने बतलाया कि सांवली का उस लड़के से संबंध था और वह उससे शादी भी करना चाहती थी. लेकिन मिसरानी जी ने आत्महत्या करने की धमकी दी, तब उसने अपनी ज़िद छोड़ी. लोक-लज्जा के भय से जोशी जी ने आनन-फानन में उस अधेड़ व्यक्ति के साथ उसका ब्याह कर दिया. वैसे मैं तो सोचती हूं कि जो हुआ ठीक ही हुआ. अगर उस लड़के के साथ भाग जाती तो अनर्थ हो जाता. बेचारे जोशी जी, इतने सालों में कमाई हुई इज़्ज़त ख़ाक में मिल जाती..."

"वह तो ठीक है मां, लेकिन किसी की ख़ुशी से बढ़कर हमारे समाज में इज़्ज़त को क्यों महत्व दिया जाता है...? क्यों किसी मासूम की ज़िंदगी समाज के नाम पर क़ुरबान कर दी जाती है....? मां-बाप के लिए बच्चों के सुख से बढ़कर कोई ख़ुशी नहीं होती, तो फिर अपनी झूठी और बेबुनियाद इज़्ज़त की दुहाई देकर बच्चों को दुःख की आग में क्यों झोंक दिया जाता है...?" कितने ही सवाल थे पूछने को, पर ज़बान नहीं खुली. वैसे भी ये सवाल

तत्काल के नहीं, बरसों पुराने हैं, जिसका जवाब आज तक न किसी औरत को मिला है न मिलेगा... ! क्या औरतों के सवालों की कोई मंज़िल नहीं हाती....? क्या सवाल पैदा होते ही हैं इसलिए कि मन के किसी कोने में दबते चले जायें....?

"सोचो बहु..." सासू मां कह रही हैं, "अगर सांवली ने कुछ उलटा-सीधा कर लिया होता तो...? सच, उसके बाद तो जोशी जी और मिसरानी जी के लिए डूब मरने के अलावा कोई चारा नहीं होता..."

तो मिसरानी काकी एवं काका ने अपने को डूबने से बचाने के लिए सांवली को डुबा दिया. मेरी भी इसमें अहम भूमिका थी. मैंने ही उसके बढ़े हुए कदम में समाज रूपी बेड़ियां डाली थीं सोचकर ही मुझे बेचैनी हो जाती. फिर मैं अपने आपको, उसके मां बाप को, कटघरे में खड़ा कर सवाल-जवाब करने लगती. हर बार मुज़रिम साबित होने के बाद भी ख़ुद को बचाने हेतु ज़िरह कर बैठती कि समाज से परे होकर आदमी के लिए चलना मुश्किल है ! अपनी सफ़ाई पेश करती रही कि शायद सांवली के नसीब में यही लिखा हो. नसीब का लिखा कोई नहीं जानता, इसीलिए इनसान अपनी सारी गलतियों को नसीब के हवाले करके ख़ुद पाक साफ़ हो जाता है, जैसे मैं हो गयी.

❑

वक़्त गुज़रता रहा अपनी रफ़्तार से... सांवली के विषय में ख़बर मिलती रही कि सांवली अपने ससुराल में ख़ुश नहीं है. उसका पति जुआरी, शराबी तो है ही और एक नंबर का शक्की भी है. वह सांवली को हमेशा शक की दृष्टि से देखता है और बात-बेबात उस पर हाथ भी उठा देता है. यह भी सुनने में आया कि उसकी दूसरी पत्नी ने भी उसके अत्याचार से तंग आकर ही आत्महत्या की थी. 'बेचारी सांवली... !' जब भी सांवली के विषय में कोई ख़बर मिलती तो ये शब्द ज़रूर मुंह से फिसल पड़ते.

....दो साल गुज़र गये. उसी बीच मेरी 'प्रेग्नन्सी' की वज़ह से मुझे गांव जाना पड़ा. मुझे वहां गये दो चार दिन ही हुए थे कि एक दिन मिसरानी काकी घबराई हुई सी आयी और बोली कि सांवली के पति की तबीयत बहुत ख़राब है. बुखार उतर ही नहीं रहा है. वहां वह हास्पिटल में भर्ती है. वह कुछ पैसों की मदद मांगने आयी थी.

करीब एक महीने बाद जोशी काका एवं मिसरानी काकी लौटे थे. साथ में सांवली भी थी. पता चला कि उसके पति ने हास्पिटल में ही दम तोड़ दिया. उसे क्या हुआ था, क्या नहीं, इसके विषय में मिसरानी काकी ने कुछ भी नहीं बतलाया. हां... रोती हुई इतना ज़रूर बता गयी कि उसकी सारी संपत्ति पर सांवली के मामा ने कब्जा कर लिया है. सांवली से मिलने के लिए मन छटपटा उठा मेरा. परंतु 'प्रेग्नन्सी' की लास्ट स्टेज होने के कारण मैं चाहकर भी उससे नहीं मिल पायी. मैंने मिसरानी काकी से कई बार कहा कि सांवली को लेकर आये. परंतु मिसरानी काकी हर बार यही जवाब देती कि वह नहीं आना चाहती. गोलू हुआ तो भी छठी में वह नहीं आयी.

गोलू की छठी के चौथे दिन की बात है. शाम का वक़्त गोलू को सुलाकर मैं भी लेटी हुई थी, तभी दरवाज़े पर खट्...खट् हुई. आंखें खोलीं तो सांवली खड़ी थी. बिल्कुल ही बदली हुई सी. रंग पहले से भी ज़्यादा सांवला हो गया था. आंखें गड्ढों में धंसी हुई. चेहरे पर ऐसी वीरानी छाई हुई थी कि जैसे सदियों से उसमें हंसी के फूल ही नहीं खिले हों. कुछ पलों तक दरवाज़े पर खड़ी...खड़ी वह मुझे देखती रही फिर अनायास भागती हुई सी मुझसे लिपट गयी और फूट-फूट कर रोने लगी.

"सांवली मत रोओ..." मेरे अंदर भी कुछ उबलने लगा.

"नहीं भाभी, आज मुझे रो लेने दो. आज ये आंसू मैं अपने लिए नहीं किसी और के लिए बहा रही हूं."

"किसी और के लिए... ?"

"हां, किसी और के लिए. आज ये आंसू मैं हरीश के लिए बहा रही हूं. भाभी, उसकी हालत बहुत ख़राब है. परसों मिलने आया था. मैं तो पहचान ही नहीं सकी. बहुत ख़राब स्थिति है उसकी. भाभी, वह मेरे बिना नहीं जी सकता..."

"और तुम...? तुम क्या उसके बिना जी सकती हो...?"

"मैंने तो अपनी ज़िंदगी के बारे में सोचना ही छोड़ दिया. जब तक सहने की शक्ति है सहती जाऊंगी. जब थक जाऊंगी तो मर..."

"नहीं सांवली... नहीं, तुम्हें मरना नहीं, जीना है. औरत का अस्तित्व इतना बेचारा नहीं होता कि वक़्त की रफ़्तार के साथ मिट जाये. हमें अपने अस्तित्व को एक नया आधार देना चाहिए..." मैंने उसका हाथ पकड़ कर भावुक स्वर में कहा.

"भाभी..."

"हां सांवली, आख़िर कब तक हम समाज से डरकर अपनी इच्छाओं का गला घोंटते रहेंगे....? हां, कल मैं ही समाज की दुहाई दे रही थी, आज मैं ही कह रही हूं कि भाग जाओ तुम उसके साथ... शादी कर लो...."

"भाभी, यह आप क्या कह रही हैं....?"

"मैं ठीक कह रही हूं... जाकर एक नयी ज़िंदगी की शुरुआत करो. लोग एक बार हाय-तौबा मचायेंगे, फिर धीरे-धीरे भूल जायेंगे. आने वाले समय में तुम्हें अपना भी लेंगे..."

"भाभी, मां और बाबूजी...?"

"उनकी चिंता मत करो. उन्हें एक बार दुःख होगा और तुमसे नफ़रत भी. धीरे-धीरे वे भी परिस्थितियों से समझौता कर लेंगे, जैसे तुमने कर लिया..."

मैंने मन ही मन सांवली के सुख की कल्पना कर अपने आपको निश्चिंत कर लिया कि चलो, मेरे कारण ही उसकी ज़िंदगी तबाह हुई थी, अब मेरे कारण ही उसकी ज़िंदगी फिर से आबाद हो जायेगी. लेकिन होनी को तो कुछ और ही मंज़ूर था. दो तीन

दिनों के बाद ही मिसरानी काकी से मुझे पता चला कि सांवली की तबीयत अचानक ख़राब हो गयी है. बहुत तेज़ बुखार है और दस्त रुकने का नाम ही नहीं ले रहे हैं. कई दिनों तक गांव में ही उसका इलाज होता रहा, पर जब कोई आराम नहीं पहुंचा तो उसे शहर ले जाया गया. वहां डॉक्टर ने जो बताया, वह विश्वास करने योग्य नहीं था. भला कौन विश्वास कर सकता था कि गांव की सीधी-सादी लड़की को 'एड्स' हो सकता है. सब लोगों को झटका लगा था, मुझे तो ख़ासकर ! मैं तो ख़्वाब में भी नहीं सोच सकती थी कि जिस बीमारी के विषय में आज तक अख़बारों में पढ़ा था एवं फिल्मों में देखा था - वह बीमारी बखरी जैसे देहात में भी हो सकती है. ख़ुद उसके मां, बाप हैरान थे कि ऐसा कैसे हो सकता है...? डॉक्टर ने सांवली को वहीं हॉस्पिटल में भर्ती करवाने के लिए कहा, पर सांवली की जिद के कारण उसे गांव लेकर लौटना पड़ा. गांव पहुंचते ही न जाने ख़बर कैसे फैल गयी कि जोशी जी की बेटी को 'रंडियों वाला रोग' हो गया है. पहले ही हरीश को लेकर उसकी भरपूर बदनामी हो चुकी थी, अब तो सारे गांव में इस बात की खूब चर्चा होने लगी. उड़ती-उड़ती ख़बर मिली कि इस ख़बर को आग बनाने में हरीश के बाबूजी का बहुत बड़ा हाथ था...

चारों ओर लोग बातें बनाने लगे. जिन घरों में शर्मा जी जोशी का काम करते थे, उन घरों से शर्मा जी को हटा दिया गया. मिसरानी काकी ने भी सब ज़गह आना-जाना छोड़ दिया. हमारे यहां भी सांवली की इस हालत के कारण व्यवहार में कुछ फ़र्क पड़ा. ससुर जी तो फिर भी तटस्थ थे, पर सासू मां का रवैया बदल गया. उन्होंने मिसरानी काकी से कह दिया कि जब तक सांवली ठीक नहीं हो जाये, वह यहां मत आये. मैंने लाख समझाया कि इसमें सांवली का कसूर नहीं है, ज़रूर उसके पति को पहले से यह बीमारी होगी; पर सासू मां ने यही कहा कि चाहे जो हो, गांव में तो यही चर्चा है कि सांवली...! बेहतर है बहू कि तुम उसके विषय में सोचना बंद कर दो.

सासू मां ने तो कह दिया, पर मेरे लिए क्या आसान था उसको भुला पाना. बार-बार मन में ख़्याल आता कि काश, मैंने सांवली को पहले ही मना नहीं किया होता. समाज की दुहाई देकर उसे सूली पर नहीं लटकाया होता. मुझे लगता कि अगर आज वह हरीश के साथ शादी कर लेती तो उसे इन परिस्थितियों से नहीं गुज़रना पड़ता. मैं अपनी ही नज़रों में अपराधी साबित हो गयी थी, जहां न कोई कोर्ट था... न कोई... वकील... न कोई जज.... और न कोई ज़िरह... फिर भी मैं गुनाहगार थी... और पश्चाताप की आग में जलती हुई सजा भी भुगत रही थी...

इस घटना के सप्ताह भर बाद ही कामेश आ गये थे मुझे लेने. उस दिन सासू मां उनको मंदिर ले गयीं. मैं तबीयत ठीक नहीं होने का बहाना कर साथ नहीं गयी. उनके जाते ही मैं सांवली के पास चली गयी. सांवली एक खाट पर आंखें बंद किये पड़ी थी. मिसरानी काकी कपड़े धो रही थी. मुझे देखते ही लपक कर आयी थी, "बहू जी आप...?"

"काकी जी मैं सांवली से मिलने आयी हूं..." कहते हुए मैं सांवली के पास बैठ गयी. सांवली की नज़रें जैसे ही मेरी नज़रों से मिलीं हम दोनों की आंखें डबडबा आयीं. मैंने आहिस्ते से उसका हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, "कैसी हो सांवली...?"

"बस, अपने मरने का इंतज़ार कर रही हूं..."

"सांवली ऐसा नहीं कहते..." मेरी आवाज़ कांप रही थी.

"क्यों नहीं कहते भाभी... ऐसा क्यों नहीं कहते...? क्या ऐसा कहना भी समाज के विरुद्ध है...? भाभी, मरने के बाद सबसे पहले मैं भगवान से पूछूंगी कि आख़िर वह औरतों को बनाता क्यों है...? अगर बनाना उसकी मजबूरी है, तो क्यों उन्हें इतना बेबस और लाचार कर देता है कि उसके लिए अपनी मर्जी से एक पल सांस भी लेना गुनाह हो जाता है...? यह समाज... और इसकी थोथी मान्यताएं.... पता नहीं, आज तक कितनी सांवलियों को इसके कारण कुरबान होना पड़ा होगा...! भाभी... आप भी तो इसी समाज की दुहाई देकर..."

"प्लीज सांवली... मुझे माफ़ कर दो..." मेरी आंखों से लगातार आंसू बह रहे थे पर वह तटस्थ हो गयी थी, जैसे कोई प्रस्तर प्रतिमा हो... ! उसने एक पल के लिए नज़रें उठायीं और आंखें बंद कर लीं. मैं थके कदमों से लौट-आयी. उस रात मेरे कानों में सांवली के शब्द कोहराम मचाते रहे. कामेश बार-बार पूछ रहे थे कि आज मैं इतने दिनों बाद मिला हूं और तुम हो कि...? अब मैं क्या बताती कि तुमसे मिलने की ख़ुशी से भी ज्यादा बड़ा फिलवक़्त मेरे लिए सांवली का गम है...! सांवली जो सिर्फ़ मेरे कारण... मेरे थोथे आदर्शों के कारण... समाज के झूठे आडंबरों के कारण... आज ज़िंदगी और मौत के बीच झूल रही है...

❑

जमशेदपुर आने के बाद मुझे पता चला कि गांव वालों का रवैया सांवली के परिवार वालों के साथ बहुत ख़राब हो गया था और लोगों के व्यवहार से क्षुब्ध होकर ही शर्मा जी ने गांव छोड़ दिया. गांव छोड़कर वे कहां गये किसी को पता नहीं. और आज इतने दिनों बाद सांवली की आत्महत्या की ख़बर सुनकर मुझे लग रहा है कि मेरे अंदर जान ही नहीं बची है. मेरा शरीर शक्तिहीन हो रहा है, पर दिल हाहाकार कर रहा है.... ! फिर मेरे अंदर कुछ बड़ी तेज़ी से उमड़ा और मैं रो पड़ी, "सांवली, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था... ऐसा नहीं करना चाहिए था."

"पर क्यों भाभी...? अनायास मुझे लगा कि सांवली खड़ी है और मुझसे पूछ रही है, ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए था भाभी...? क्यों नहीं करना चाहिए था...? क्या ऐसा करना भी समाज के विरुद्ध है....???"

देवकीधाम, फ्लैट न. ए/३,
वेस्ट बोरिंग कैनाल रोड, पटना-८०० ००१

मैं क्या हूं... मुझे पता नहीं... परिवार के लिए आज भी आवारा हूं...!

✍ प्रकाश श्रीवास्तव

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह और मंगला रामचंद्रन से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है प्रकाश श्रीवास्तव की आत्मरचना.)

बचपन की धमाचौकड़ी के बीच जब मैंने होश संभाला तो मेरे स्वागत में भरा पूरा और शिक्षित परिवार था. पिता स्व. कृष्णावतार लाल श्रीवास्तव वाराणसी के अग्रसेन महाजनी इंटर कॉलेज में गणित व महाजनी के अध्यापक थे और माता श्रीमती किशोरी देवी श्रीवास्तव नगर पालिका स्कूल में प्रधानाध्यापिका थीं. बहनें जो मुझसे छोटी थीं, पढ़ रही थीं. एक सामान्य मध्यवर्गीय परिवार की जो आर्थिक तंगी हो सकती थी, वह मेरे परिवार के साथ भी थी. मां और पिताजी दोनों के सर्विस में होने के कारण चिंता वाली कोई विशेष बात नहीं थी. मां-बाप का इकलौता पुत्र होने के कारण मैं लाड़-प्यार में थोड़ा ज़्यादा ही उच्छृंखल हो गया था. ज़िम्मेदारी क्या चीज़ होती है... मैं नहीं जानता था. स्वाभाविक था कि इस पक्ष पर सोचने और समझने की ज़िम्मेदारी मां और पिताजी पर ही थी. शुरुआत से ही इस चिंता से मुक्त होने के कारण मैं स्वयं अपने मां-बाप की चिंता का कारण बन गया. इसका ख़ामियाज़ा उस समय तो क्या मैं आज तक भुगत रहा हूं. एक आवारा बेटे की जो हैसियत परिवार में होती है, वही मेरी भी हो गयी थी.

किसी तरह कॉलेज की शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात मैं १९७३ में सर्विस में आ गया लेकिन परिवार में मेरी हैसियत ज्यों की त्यों बनी रही. मैं आवारा...निकम्मा...नालायक..तब भी था और सर्विस में आने के बाद भी वही था. अंतर मात्र इतना हुआ कि मैं एक सरकारी मुलाज़िम मात्र बन गया था. लेकिन वाह रे दुर्भाग्य ! कार्यालय की एक सुनियोजित साज़िश का मैं शिकार बना और साल भर बाद ही नौकरी से निकाला गया. वही नौकरी लगभग एक पखवारे बाद मुझे पुनः मिली और तबसे आज तक मैं उत्तर प्रदेश सरकार के खाद्य तथा रसद विभाग में स्थानीय संभागीय खाद्य नियंत्रक कार्यालय, वाराणसी में कार्यरत हूं.

मेरे अंदर लेखकीय कीड़ा कब उत्पन्न हुआ... मैं नहीं जानता. हां, इतना अवश्य कह सकता हूं कि वाराणसी से प्रकाशित होने वाले तत्कालीन सांध्यकालीन हिंदी दैनिक "सन्मार्ग" व "जयदेश" में प्रथमतः मेरी रचना १९६९-७० में प्रकाशित हुई. मेरे लिए यह नयी बात थी. इसी के साथ कवि व रचनाकार की मुहर मेरे नाम पर लग चुकी थी. इसका मुझे जहां कुछ लाभ हुआ, वहीं हानि भी हुई. परिवार शिक्षित ज़रूर था लेकिन रचनाकार होने का दंभ मैं परिवार में नहीं पाल सकता था... क्योंकि इससे अर्थोपार्जन नहीं किया जा सकता था और "अर्थ" से इतर किया गया कोई भी कार्य भला परिवार को क्या दे सकता था. जैसे-जैसे मेरा रचनाकार पुख़्ता होता गया... मैं परिवार से दूर ... और दूर होता चला गया. साहित्यिक जीवन में परिवार से दूर होना ही मेरी सबसे बड़ी साहित्यिक उपलब्धि (?) रही है.

अपने रचनाकार होने के संदर्भ में मैं अपनी ग़ज़ल के निम्न शेर को उद्धृत करना चाहूंगा-

"जाने कौन शब्द के अर्थ को बदल दे रहा है,
आदमी को ज़हर और पत्थरों को गंगाजल दे रहा है."

जब जीवन की कटुताओं के बारे में सोचने लगता हूं... पसीने की बूंदें अनायास चुहचुआ आती हैं. लगता है जैसे सांसें थम जायेंगी. मगर कुछ ऐसे क्षण भी होते हैं...जब मैं पूरी तरह थम-सा जाता हूं....और क़लम काग़ज़ पर कुछ लिखने को बाध्य करती है. तब लिखने के बाद मैं स्वयं को हल्का महसूस करता हूं. अब तक जो कुछ भी लिखा है...या लिखूंगा वह मेरी निजी सोच के बावजूद उन चेहरों के लिए भी सही उतरती है जो ज़िंदगी को पास से देखते, महसूस करते या भोगते हैं. कभी-कभी अंधेरे पिंजरे में क़ैद कबूतर की तरह छटपटाने लगता हूं. मन करता है कि कुछ लिखूं. संभवतः ऐसे ही किसी क्षण में अंतस की छटपटाहट

से इन पंक्तियों ने आकार लिया होगा-

'आकाश का सूरज भी ढलता है,
काहे को तू इतना उछलता है ।
बोटि यां तेरे ज़िस्म में भी हैं,
किसलिए मछलियों को तलता है ।'

उस समय मेरी दृष्टि समाज के सबसे निचले तबक़े के पहले आदमी पर जाकर ठहरती है...मैं उसे व्यक्त करना चाहता हूं... उसकी छिछली और बनावटी हंसी की परतों के नीचे छिपी पीड़ा को शब्दों का रूप देने की कोशिश करता हूं. यही सच है कि मेरी कविता इस समाज के उसी आदमी के लिए है... और होनी भी चाहिए. हिंदी ग़ज़ल वर्तमान परिवेश में सार्थक अभिव्यक्ति की सशक्त विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है. इसे लेकर किसी भी प्रकार का वितंडावाद खड़ा करना मेरी समझ से एक पागलपन के सिवा और कुछ भी नहीं है. इसके पास अपनी भाषा है, अपना तेवर है. आज आवश्यकता है कि हिंदी ग़ज़ल को पुस्तकों अथवा साहित्यिक पाठक एवं श्रोताओं तक ही सीमित न रखकर इसे और अधिक फैलाया जाये. इसे जनभावना के समीप लाना होगा-जनभाषा में. यह बात बताना मैं भूल गया कि पहले मैं नयी कविता के माध्यम से साहित्य में जाना गया. जबकि मेरी शुरुआत मुक्तक, गीत और ग़ज़ल आदि छंदों से ही हुई है.

उन्हीं दिनों लगभग सन् १९७६-७७ के आसपास काशी के युवा कवियों, रचनाकारों को एकत्रित कर युवा साहित्यकार संसद का गठन भी किया गया. जिसकी चर्चा काशी में ख़ूब रही, इसमें प्रमुख रूप से हिमांशु उपाध्याय, गणेश प्रसाद 'गंभीर', शिव कुमार 'पराग', सुरेंद्र वाजपेयी 'मधुर', शीतला प्रसाद पांडेय 'समीर', अजित श्रीवास्तव, अशोक पाठक, दानिश जमाल सिद्दिक़ी, आर. राजीवन आदि सम्मिलित थे. इनमें से गीतकार अनजान के पुत्र शीतला प्रसाद पांडेय 'समीर' आज हिंदी फिल्मों के प्रमुख गीतकार हैं जो आज भी समीर के नाम से हिंदी फिल्मों को अपने मधुर गीतों से सुशोभित कर रहे हैं.

गणेश प्रसाद 'गंभीर' में मैंने ग़ज़ब की प्रतिभा देखी. इस सत्य को स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं है कि फटेहाल 'गंभीर' के लिए अपना एक संक्षिप्त व स्वतंत्र संकलन दे पाना संभव नहीं था. ऐसी ही सोच और परिस्थितियों में सन् १९७९ में गंभीर के एक स्वतंत्र संकलन 'दंश और द्रोह' का संपादन व प्रकाशन मेरे द्वारा किया गया. इसके बाद काशी के रचनाकारों में हलचल-सी देखी गयी और साहित्यिक गतिविधियां तीव्र हो गयीं और कई कवियों के संकलन भी आये.

सन् १९७९ में त्रिलोचन शास्त्री द्वारा संपादित तथा विष्णुचंद्र शर्मा को समर्पित काव्य संकलन 'संतुलन', जिसमें सात रचनाकार सम्मिलित थे, मेरी पहली उपलब्धि रही है. संतुलन के सात रचनाकार सर्वश्री राजेंद्र प्रसाद सिंह, प्रकाश श्रीवास्तव, देवेश पांडेय, गोविंद 'व्यथित', गणेश प्रसाद 'गंभीर', डॉ. रमेश प्रसाद गर्ग 'आतिश', विजय विरोधी थे. आलोचकों द्वारा संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचना के रूप में मेरी कविता 'इंसानी धमाके के बाद' और 'सपना' को चिन्हित किया गया. लगभग दो दशक के बाद आज से लगभग चार-पांच वर्ष पूर्व काशी के रचनाकार ब्रजेंद्र गर्ग को संबोधित एक महत्वपूर्ण पत्र में विष्णुचंद्र शर्मा ने इस बात को मन से स्वीकार किया कि 'संतुलन' काव्य संकलन के साथ वास्तविक न्याय नहीं हो सका और उसकी जितनी चर्चा होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हुई. इस बात का उन्हें वास्तव में खेद भी है. विष्णुचंद्र शर्मा का वह महत्वपूर्ण व ऐतिहासिक पत्र ब्रजेंद्र गर्ग के पास आज भी सुरक्षित है. 'संतुलन' के प्रकाशन के पूर्व तक मेरी रचनाओं का प्रकाशन क्षेत्र नगर की पत्र-पत्रिकाओं तक ही सीमित था. लेकिन 'संतुलन' के पश्चात मेरी रचनाएं देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित तथा आकाशवाणी से प्रसारित भी हुई.

इसी बीच काशी के साहित्य में नयी कविता के क्षेत्र में ब्रजेंद्र गर्ग का नाम तेज़ी से उभरा और मेरे जीवन में ब्रजेंद्र एक मित्र के रूप में आया. मेरे जीवन में वैसे तो मित्र के रूप में अनेक नाम आये और गये. लेकिन ब्रजेंद्र एक ऐसा नाम है जो आज भी मेरे मित्र के रूप में समान रूप से विद्यमन है. इसके पीछे निस्वार्थ संबंध और वैचारिक समानता एक होने का कारण हो सकता है. ब्रजेंद्र की उस समय की एक चर्चित कविता 'समय रुक गया है' की निम्न पंक्तियों में मैं कहीं न कहीं अपने आपको भी तलाशने की कोशिश करता हूं-

'समय न जाने क्यों
एक बिंदु पर रुक गया है
हर कोई परेशान
अपने लबादे में छिप रहा है
आख़िर कौन-सी विवशता है
जो इन्हें जीने से रोकती है...?'

इधर काशी की साहित्यिक गतिविधियां अपनी गति से आगे बढ़ ही रही थीं कि एक साहित्यिक आयोजन में हिंदी के नवगीतकार डॉ. ठकुर प्रसाद सिंह ने काशी के रचनाकारों की छाती पर एक जुमले से प्रहार कर दिया कि काशी में साहित्यिक सन्नाटा है. युवा कवि अजित श्रीवास्तव ताव खा गये और उनके संपादन में ठकुर प्रसाद सिंह के इसी वक्तव्य कि नगर में साहित्यिक सन्नाटा है को सादर समर्पित करते हुए नगर के १३ कवियों का एक काव्य संकलन 'नया सप्तक' १९८० में प्रकाशित हुआ. इसमें सर्वश्री ब्रह्माशंकर पांडेय, दानिश जमाल सिद्दिक़ी, शिव कुमार गुप्त 'पराग', सुरेंद्र वाजपेयी, गणेश प्रसाद, 'गंभीर', बाग़ी जयप्रकाश, अजित श्रीवास्तव, केशव शरण, विजय शंकर श्रीवास्तव 'विरोधी', सिद्धनाथ शर्मा, प्रकाश श्रीवास्वत, राजेंद्र प्रसाद सिंह और गोविंद व्यथित की कविताएं मुख्य रूप से प्रकाशित की गयीं.

इसके बाद १९८२ में मेरे संपादन में ब्रजेंद्र गर्ग के कविता संकलन 'दो कदम और' का प्रकाशन हुआ. इसमें काशी के युवा

कवि गणेश प्रसाद 'गंभीर' ने अपनी एक तेज़तर्रार भूमिका प्रस्तुत की. 'दो क़दम और' के संपादन एवं प्रकाशन से एक लाभ हुआ कि काशी के साहित्य में ब्रजेंद्र गर्ग मज़बूती से आये. स्वभाविक था कि इसका श्रेय मुझे प्राप्त हुआ. इसकी उपलब्धि यह रही कि 'दो क़दम और' का लोकार्पण सुप्रसिद्ध कथाकार डॉ. काशीनाथ सिंह ने किया और लोकार्पण समारोह की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. बच्चन सिंह ने की. डॉ. काशीनाथ सिंह द्वारा लोकार्पित यह कृति उनके जीवन की प्रथम विमोचित कृति है. इस बहाने ब्रजेंद्र को देश के इन दो महान साहित्यकारों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ. विडंबना यह भी कि एक काव्यकृति का लोकार्पण एक कथाकार द्वारा किया गया. हो सकता है कि ब्रजेंद्र के मानस गुरू डॉ. काशीनाथ सिंह के आशीर्वाद का ही यह प्रतिफल है कि अपनी वास्तविक ज़मीन की तलाश करते हुए आज ब्रजेंद्र गर्ग कहानी लेखन में भी मज़बूती से क़दम रख रहा है.

इस बीच मेरे पिताजी का निधन हो गया. पिताजी के निधन पर मैं बहुत रोया था. मैंने सोचा था कि अब मैं परिवार के बारे में कुछ सोचूंगा... लेकिन रात गयी बात गयी. कुछ दिनों पश्चात मैं पुनः परिवार की चिंता से दूर साहित्यिक गतिविधियों आदि में ही डूबा रहा. रात में घर लौटता तो झल्लाये मन से मेरा स्वागत किया जाता. कलह, किचकिच भी होती. लेकिन, मेरे अंदर न तो कोई परिवर्तन होना था... और ना ही हुआ. मां की डांट-डपट के बीच पत्नी का भी कोपभाजन बनना पड़ता. लेकिन यह मेरे लिए कोई नयी बात नहीं थी. मेरे तेज़ स्वर से ही सब कुछ ऐसे शांत हो जाता... जैसे खौलते चाय में ठंडा पानी डालने से चाय का उबाल ! लेकिन आग पर चढ़ी चाय पुनः खौलने पर उबाल खाने लगती. स्वभाविक था कि घर के इस वातावरण का असर आने वाली पीढ़ी पर भी पड़ना था... सो पड़ा भी. मेरी अहमियत बच्चों में भी समाप्त होने लगी. साहित्य में मैंने क्या पाया, यह तो नहीं जान सका... इतना अवश्य कह सकता हूं कि मैंने खोया अवश्य है - वह है अपना परिवार !

एक दिलचस्प घटना याद आ रही है. काशी के रचनाकार कवि सुरेंद्र वाजपेयी 'मधुर' का दीपावली पर एक लेख हिंदी दैनिक 'आज' में प्रकाशित हुआ था. दीपावली पर आधारित उस लेख में उन्होंने संदर्भवश मेरी ग़ज़ल के एक शेर *'ये अंधेरा मेरे अश्कों को छुपा लेता है, क्या करूंगा तिजारत की रोशनी लेकर'* को मेरे नाम से ही उद्धृत किया. यह जानकारी मुझे काशी के सशक्त हस्ताक्षर कवि गणेश प्रसाद 'गंभीर' ने उसी दिन दी. जब मैं वाजपेयी जी को धन्यवाद देने उनके घर गया तो उन्होंने बताया कि उस लेख में संदर्भवश उक्त शेर को उद्धृत किया गया. यदि वे उक्त शेर को नहीं लेते तो उनका लेख जैसे अधूरा रह जाता.

उपरोक्त के अतिरिक्त कई पत्र-पत्रिकाओं तथा संकलनों में मेरी रचनाएं प्रकाशित होती रहीं, लेकिन अपना कोई स्वतंत्र संग्रह आज तक नहीं दे सका. एक बार प्रयास भी किया तो मेरी ग़ज़लों

१ जुलाई १९५२, वाराणसी:
इंटरमीडिएट, आयुर्वेद रत्न

लेखन : देश की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.

संप्रति : उत्तर प्रदेश सरकार के अंतर्गत खाद्य तथा रसद विभाग में संभागीय खाद्य नियंत्रक, वाराणसी कार्यालय में कार्यरत.

की मूल पांडुलिपि अपने ही शुभचिंतकों के बीच कहीं खो गयी. वह पांडुलिपि आज तक नहीं मिली.

फिल्मी गीतकार अनजान के निधन के पश्चात् उनके पुत्र प्रसिद्ध फिल्मी गीतकार समीर के प्रयास से १९९८ में क्रिएटिव पब्लिकेशन, नवापुरा, वाराणसी द्वारा गीतकार अनजान की यादों को समर्पित करते हुए गीतकार समीर सहित काशी के सात कवियों हिमांशु उपाध्याय, गणेश प्रसाद 'गंभीर', प्रकाश श्रीवास्तव, सुरेंद्र वाजपेयी 'मधुर', राजेंद्र आहुति एवं डॉ. कवींद्र नारायण की कविताओं का प्रकाशन किया गया. इस संकलन में अनजान जी की यादों को समर्पित करते हुए ब्रजेंद्र गर्ग का एक लेख 'काशी की गंगा से गीतों के सागर तक' भी प्रकाशित हुआ.

यहां पर मैं "कथाबिंब" के 'परिवार' से हुए परिचय के बारे में भी बताना चाहता हूं. मित्र कवि अजित श्रीवास्तव के आमंत्रण पर अरविंद जी और मंजुश्री जनवरी २००१ में दो दिनों के लिए वाराणसी पधारे. दोनों दिन उनके सम्मान में कार्यक्रम हुए. पहले दिन संतोष कुमार श्रीवास्तव 'सागर' की कविता पुस्तक 'दिल की धड़कन' का विमोचन हुआ. दूसरे दिन अरविंद जी का अभिनंदन कार्यक्रम था. इस कार्यक्रम के अध्यक्ष थे डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र. पं. श्रीकृष्ण तिवारी और कहानीकार पत्रिका के संपादक श्री कमल गुप्त का भी सान्निध्य हमें मिला था. अपने अभिनंदन के समय भाई अरविंद द्वारा कही बात बरबस याद आती है. उन्होंने कहा था कि मुझे मालूम होता कि वाराणसी के लोग इतना ज़बरदस्त अभिनंदन करते हैं तो मैं बहुत पहले आता. उन्हीं दिनों से अरविंद जी से मेरा ही नहीं ब्रजेंद्र गर्ग, राजेंद्र 'आहुति', केशव शरण आदि अभिन्न मित्रों का एक आत्मीय संबंध स्थापित हो गया है.

प्रकाश श्रीवास्तव की ग़ज़लें

सुख कहां तक नसीव होता है,
आदमी तो ग़रीव होता है ।
ज़िंदगी... ज़िंदगी सी लगती है,
दोस्त जव तू क़रीव होता है ।
खुद को डसना है ख़ुद ही मरना है,
कौन किसका रक़ीव होता है ।
भूल जाते सारे रंजो-ग़म,
प्यार कितना अजीव होता है ।
खुद को पहचान जो नहीं पाता,
वो वहुत वदनसीव होता है ।

कथ्य नव्य है, शब्द नव्य है,
सत्य कहूं पर किसे श्रव्य है ।
पूर्णाहुति लो काल देवता,
प्राण मनुज का आज हव्य है ।
क्षुधा द्रोह का बीजांकुर है,
मित्र याचना तो पशव्य है ।
अमर नहीं हैं दमनोपासक,
परिवर्तित हर एक द्रव्य है ।
कल भूलुंठित होगा निश्चित,
आज तुम्हारा दर्प भव्य है ।

गुनाहों को जड़ से मिटायेगा कौन,
विखरते वतन को वचायेगा कौन ।
गुलावों की क्यारी है सूखी हुई,
लहू अपना फिर से वहायेगा कौन ।
ज़हर के समंदर में डूवे हैं लोग,
कवीरा सा घर को जलायेगा कौन ।
लहू पी के शैतान पागल हुए,
वग़ावत का परचम उठायेगा कौन ।
वतन वेच के जो मुस्का रहे,
उन्हें इस ज़मीं से उठायेगा कौन ।

तुम हो अगर सवाल मुक्कमल जबाब हूं,
तुम हो अगर ख़राब, मैं बहुत ख़राब हूं ।
ज़ालिम का क़त्ल करके मिले वो सवाब हूं,
हाकिम की क़लम जिससे डरे वो अज़ाब हूं ।
हर फ़लसफे पे जिसके बग़ावत लिखी हुई,
जम्हूरियत के नाम लिखी वो किताब हूं ।
ये 'पद्मश्री' बचाये रखो काम आयेगी,
मैं आदमी हूं आप ही अपना ख़िताब हूं ।
जुल्मो-सितम के बीच रियाया ही पिस रही,
उस दौरे सियासत में उठ इन्क़लाब हूं ।

वक़्त के पांव में कांटें हैं निकाले कोई,
मुल्क ढहने को है वढ़के वचाले कोई ।
हम अंधेरी गुफ़ा में दम तोड़ रहे हैं क्यूं,
उस तरफ़ वादियों की ताज़ा हवा ले कोई ।
ये भी इन्साफ़ नहीं, ये भी इन्साफ़ नहीं,
किसी ने क़त्ल किया, लाश छुपा ले कोई ।
आज के दौर में हैरत की कोई वात नहीं,
जो क़लम छोड़ के वंदूक उठा ले कोई ।

आप जख़्मों को सुबह शाम दिखाते रहिए,
अपनी तस्वीर को ख़ुद आप मिटाते रहिए
रोशनी क़ैद हुई कातिलों की मुट्ठी में,
आप नज़रों को अंधेरे से बचाते रहिए ।
हमको पहचान है रहजन की और साथी की,
एक चेहरे पे कई चेहरे लगाते रहिए ।
रंग लायेगा दोस्त कभी शहीदों का लहू,
अपने दामन के दाग़ लाख छिपाते रहिए ।
कौन उठता हुआ तूफ़ान रोक पायेगा,
आप इन्सान की आवाज़ दबाते रहिए ।
कारवां बढ़ रहा है जलती मशालें लेकर,
आप इन राहों पे बारूद बिछाते रहिए ।
वक़्त कल अपनी अदालत से फ़ैसला देगा,
आज हम सबको गुनहगार बताते रहिए ।
जो भी सच बोलता हो उसका क़त्ल कर दीजै,
उसकी तस्वीर को कमरे में सजाते रहिए ।

देश यह विकाऊ है वोलियां लगाओ न,
एक वात तुम फिर से यार आ भी जाओ ना ।
माफ़िया परस्ती में जुट गयी सियासत है,
माफ़ियों को जनता का रहनुमा वनाओ ना ।
नैन ये तरसते हैं चैनलों की वारिश में,
जो नहीं दिखा अव तक अव हमें दिखाओ ना ।
फिट मिसाइलें कर लीं सामरिक ठिकानों पर,
देर कर रहे हो क्यों तुम हमें मिटाओ ना ।
पाणिनी नहीं हैं अव, अव मिहिर नहीं कोई,
वेवसाइटें लाकर अव हमें सिखाओ ना ।
विल्डिंगों के साये में झुग्गियां वची क्यूं हैं,
इस तरफ़ अंधेरा है तीलियां जलाओ ना ।

✍ ए. ३६/२६, क-३, कोनिया सट्टी रोड, मंसादेवी मंदिर के पास, भदऊं, राजघाट, वाराणसी-२२१ ००१

वर्ष २००३ में सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र के संपादन में प्रकाशित होने वाली लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिका 'साहित्य अमृत' के अप्रैल, २००३ के अंक में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद का एक वृहद् किंतु सारगर्भित लेख 'काशी का हिंदी साहित्य' प्रकाशित हुआ. काशी के रचनाकारों को केंद्र में रखकर लिखे गये इस लेख में ग़ज़ल के संदर्भों में मेरी चर्चा करते हुए डॉ. विश्वनाथ प्रसाद ने लिखा -'प्रकाश श्रीवास्तव की ग़ज़लों में गहरा सामाजिक बोध और कहीं-कहीं विद्रोह है'.

कभी-कभी सोचता हूं कि रत्नाकर कैसे बाल्मीकि हो गये... तुलसी कैसे तुलसीदास हो गये. फिर यह भी सोचता हूं कि वे डाकू थे इसलिए बाल्मिकि हो गये... और तुलसी को रत्नावली मिली, इसलिए तुलसीदास हो गये. मैं भी डाकू होता तो निश्चित रूप से आज बाल्मिकि होता.... मुझे भी रत्नावली मिली होती तो मैं भी तुलसीदास होता. जहां तक मैंने जाना है कि संसार में हर चीज़ का जोड़ा होता है, लेकिन शून्य का कोई जोड़ा नहीं होता. मैं शून्य हूं और कुछ भी नहीं. मैं उस टेसू के फूल जैसा हूं जो निर्गंध होने के कारण तिरस्कृत ही रहता है. रचनाकार किसी एक परिवार का तो नहीं होता. रचनाकार यदि रचनाकार है तो वह पूरे देश का होता है. लेकिन जब देश ही आदमी से शून्य हो जाये... सबकी संवेदनाएं मर जायें...तब बाध्य होकर लिखना ही पड़ता है-

''पत्थरों को गुमान है,
आदमी बेज़ुबान है।''

आदमी के संवेदना शून्य होने के पीछे भी कहीं न कहीं देश की संसद भी कम ज़िम्मेदार नहीं है जो आज अपने मूल दायित्वों से हट गयी है. इसे कैसे नज़रअंदाज़ किया जा सकता है. यह भी तो एक पीड़ा ही है-

'' मैंने उनको संसद के भीतर देखा ।
स्कूली बच्चों से भी बदतर देखा ।।''

फिर भी लोग मुझसे अपेक्षा करते हैं और मैं भी उन लोगों की अपेक्षा के अनुकूल उतरता रहा... उतरता रहा और अंत में-

''टूटकर बिखर गया हूं मैं,
ज़िंदगी तुझसे डर गया हूं मैं ।
हसरतों ने जिलाये रखा है,
वर्ना कब का ही मर गया हूं मैं ।''

झूठ तो झूठ ही होता है. लेकिन आज झूठ का ही बोलबाला है. झूठ ही सच लगता है -

''आज भी वही हुआ,
झूठ फिर सही हुआ ।''

प्रतिदिन हम और आप झूठ से ही तो सामना करते हैं. घर से बाहर भी और घर में भी. न मालूम कितना झूठ बोलते हैं और कितना झूठ सुनते हैं. आज सोचता हूं कि अब तक जितना समय साहित्य को दिया, उसका आधा भी परिवार को दे सकता तो आज मेरा परिवार अपना होता. मैं देखता हूं पत्नी को घर के लोगों के लिए और घर आये मेहमानों के लिए रसोई बनाते हुए. मैं देखता हूं अपनी युवा संतानों को अपने जीवन में संघर्ष करते हुए... तब सोचता हूं कि मैंने क्या किया... मैंने तो कुछ नहीं किया. जो ये कर रहे हैं. मैं यह भी देखता हूं अपनी मां को, परिवार के सदस्यों को मज़बूती से पकड़े हुए. वहीं मैं अपने आपको भी तो देखता हूं जो उनका होते हुए भी उनका नहीं है.

रचना पक्ष के संदर्भ में मेरी ग़ज़ल *'सोच रहा है ये अलगू, सोच रहा है अब्दुल्ला, मरता नहीं फ़सादों में कोई पंडित या मुल्ला'* पर टिप्पणी करते हुए जब मेरे कवि मित्र ब्रजेंद्र गर्ग ने मुझे कबीर के संदर्भों से जोड़ा, तब मुझे लगा कि मैं काफ़ी बौना हो गया हूं. चंद पंक्तियां लिखकर आज का कोई रचनाकार कुछ भी हो सकता है, लेकिन वह कबीर तो नहीं हो सकता. बहरहाल, मैं बीते हुए कल का रचनाकार हूं... या आने वाले कल का... या दोनों के सम्मिश्रण से मैं आज का रचनाकार हूं. इसका निर्णय मैं आप पाठकों पर छोड़ता हूं. मैं जो कुछ भी हूं... एक खुली क़िताब की तरह आपके सामने हूं. □□□

लघुकथा

अठारहवां वसंत

✍ राजकमल सक्सेना

'क्या ज़माना है, लोगों में जरा भी शर्म-हया बाकी नहीं रह गयी है ?' हाथ में हाथ डाले एक नवविवाहित युगल को पास से गुज़रते देख पार्क में चहल-कदमी करते एक वृद्ध महाशय बुदबुदाये.

'कुछ कहा क्या आपने ?' साथ चल रही उनकी एक कान से बहरी वृद्ध पत्नी ने पूछा.

'अब कहना क्या, ख़ुद ही देख लो.... क्या हम तुम चले थे कभी इस तरह ?' वृद्ध ने आगे निकल चुके नवविवाहित युगल की ओर इशारा करते हुए पत्नी के कान के पास मुंह ले जाकर, चुटकी लेते हुए कहा.

'धत्त, क्यों ठिठोली करते हो, बच्चे हैं.... उनके खेलने खाने के दिन हैं. ज़माना बदल गया है. वो ज़माना कुछ और था ये ज़माना कुछ और है.' वृद्ध को समझाती हुई वृद्धा बोली.

बातें करते-करते पार्क से निकलकर दोनों सड़क किनारे आ खड़े हुए. तभी अचानक सड़क पार करने की गरज़ से वृद्ध दंपति के हाथ अनायास ही एक दूसरे के हाथ में आ गये. वृद्ध महाशय का ध्यान दायें-बायें देखकर सड़क पार करने की ओर था, लेकिन इसके विपरीत दूसरी ओर सकुचाती, शर्माती सी उनकी बूढ़ी पत्नी के झुर्रीदार चेहरे पर एक नवविवाहित अल्हड़ युवती का अठारहवां वसंत हिलोरें मार रहा था.

१०४, कुटुंब अपार्टमेंट, बलवंत नगर,
थाटीपुर (मुरार), ग्वालियर-४७४ ००२.

सागर / सीपी

'लिखना, अन्यायपूर्ण व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ाई है !'

- डॉ. जगदंबा प्रसाद दीक्षित

(प्रसिद्ध साहित्यकार एवं चिंतक डॉ. जगदंबा प्रसाद दीक्षित से श्रीमती मधु प्रकाश की बातचीत.)

● **आपके लिए लेखन क्या मायने रखता है ?**

लेखन जो है, वह महत्वपूर्ण दो तरह से हो जाता है, दो ज़रूरतें पूरी करता है - अपने आपको शेयर करने की इच्छा. लेखक में यह इच्छा ज़्यादा होती है, कई स्तरों पर होती है - जैसे भावनात्मक, कलात्मक स्तर पर. अपने व्यक्तित्व को सबके साथ बांट रहे हैं, इसमें एक तरह की संतुष्टि होती है. जो लोग स्वांतः सुखाय लेखन करते हैं, उसमें 'मैं' शामिल है. इसमें 'स्व' ही काफ़ी व्यापक है. मैं ख़ुद को बांटता हूं तो सिर्फ़ मेरा सुख-दुःख मेरा ही नहीं, सबका है. यह बांटना ही लेखन का अर्थ है.

मेरे आस-पास जो समाज, उसकी व्यवस्था है, उसे मैं काफ़ी अन्यायपूर्ण और विषम मानता हूं. मैं ख़ुद जिन हालातों में पला-बढ़ा उसमें यह रहा कि मैं ख़ुद अन्याय का शिकार हूं. लिखना - अन्यायपूर्ण व्यवस्था के ख़िलाफ़ एक लड़ाई लड़ना है. उस पर मैं उंगली रखता हूं, एक्सपोज़ करता हूं. ऐसे में लेखन औज़ार हो जाता है. लेखन मेरे लिए यही मायने रखता है.

● **लेखन आपके लिए प्राथमिकता है या जीवन शैली ?**

मेरे लिए लेखन जीवन-शैली है. जहां ज़िंदगी में और आवश्यकताएं हैं, लिखना भी आवश्यक है. जहां इतनी लड़ाई लड़ते हैं, लिखना भी लड़ाई है. इसमें हम बहुत से कार्य-कलाप लेकर चलते हैं, कलात्मक अभिव्यक्तियों के रूप गढ़ते हैं, वहां लिखना भी एक हिस्सा है. मैं यह नहीं कहूंगा कि लेखन को प्राथमिकता देता हूं, पर कलात्मकता के अनेक रूप हैं जिन्हें मैं पसंद करता हूं. दृश्य विधाओं - नाटक, सिनेमा में भी अभिव्यक्ति का बहुत बड़ा स्थान है. वैचारिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, आर्थिक चिंतन, विश्लेषण मेरे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं. साहित्य लेखन की प्राथमिकता नहीं होती. वह इन्हीं गतिविधियों में से एक है. लेखन मेरी जीवन-शैली है, यह नहीं कहूंगा, बल्कि यह मेरे जीवन का हिस्सा है.

● **आप क्या एक लेखक को आम आदमी से अलग मानते हैं ?**

किसी हद तक लेखक थोड़ा भिन्न होता है, पर आम आदमी से ऊपर होता है, ऐसा मैं नहीं मानता. किसी ने कहा भी है कि मोची जो जूता बनाता है, वह उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना लेखक का लेखन है. वह ऍलीट है, पर ऊपर नहीं है. कुछ लेखकों और कवियों को देखकर लगता है कि वे आम आदमी से भी नीचे हैं. आम आदमी में आदमियत तो है. पुरस्कारों के रूप में, विदेश यात्राओं, अनुदान के रूप में भ्रष्टाचार फैल रहा है. इससे कभी-कभी लगता है कि लेखक आम आदमी से नीचे हो गया है.

● **आप कहानी या उपन्यास लिखते समय किस मानसिकता से गुज़रते हैं ?**

लेखन के लिए मानसिक स्थिति ज़रूरी है. आप जिस माहौल में हैं, उसमें से दूसरे माहौल में पहुंचना होता है. जब तक आप उस माहौल में, चरित्र में डूब नहीं जाते, लिख नहीं सकते. मेरे लेखन में शैली, माहौल, चरित्र का महत्व होता है. जब तक मैं उस माहौल में डूब न जाऊं, लिख नहीं सकता. लेखक लिखते समय उस माहौल को अनुभव करता है, सपने में वे पात्र आते हैं, मैं दुनियां से कट जाता हूं. मैं मानता हूं कि जीवंत रचना लिखना चाहते हैं तो उस जीवंत संसार में जाना होता है. मानसिकता के एक अनुभव संसार से गुज़रना बहुत ज़रूरी है.

● **आपकी विचारधारा क्या है ? क्या इसमें बदलाव आया है ?**

मेरी विचारधारा को क्या नाम दिया जाये ? मार्क्सवाद, लेनिनवाद - जब मैंने इनकी विचारधारा को जानना चाहा तो मार्क्सवाद की किताबों को पढ़ने से पूर्व पाया कि हर दौर में ऐसे लोग होते हैं जो समान अनुभव से गुज़रते हुए समान निष्कर्ष पर पहुंचते हैं. मार्क्सवाद पढ़ने के बाद लगा कि सिर्फ़ लोकल शोषण नहीं है, यह पूरी दुनिया में फैला है. परंतु मूल रूप से शोषण, अत्याचार के ख़िलाफ़ लड़ रहा हूं, यही विचारधारा है. कुछ लेखक सिर्फ़ किताबें पढ़कर नारे लगाने लगते हैं, मैं उससे बचा रहा हूं. जीवन स्वयं बोल रहा है और उसे पाठक तक पहुंचाना लेनिनवाद, मार्क्सवाद है. मैंने किताबों से पढ़कर रट लिया हो ऐसा नहीं है. जीवन की गत्यात्मकता को पढ़ा है. कहा जाता है कि समाज डेमोक्रेटिक है, पर हमारे यहां समाज व्यवस्था मे मतभेद है. यदि आप इस व्यवस्था पर उंगली रखते हैं तो समाज में दंड दिया जाता है. यदि आप उग्रम रूप से समाज के खिलाफ़ हैं तो आपको सज़ा दी जाती है. आपको तोड़ने की कोशिश की जाती है. कई बार लेखक टूट भी जाता है और यही समाज के चौधरी की जीत है.

● **आपके ख़्याल से आप अपनी किस रचना को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं ?**

यह सवाल अजीब है और कई बार पहले भी मुझसे पूछा जा चुका है. सर्वोत्कृष्ट कुछ भी नहीं है, मुझे 'मुर्दाघर' से भी कई उपन्यास अच्छे लगते हैं. जो पाठकों की दृष्टि में सर्वोत्कृष्ट होता है, लेखक की नज़र में नहीं. मैं अपनी तरफ़ से सबसे उत्तम देता हूं. कुछ लोगों को 'कटा हुआ आसमान' पसंद है तो कुछ को 'मुर्दाघर'. कई लोगों को वेश्याओं का जीवन आकर्षक लगता है.

'कटा हुआ आसमान' में शहर का जो जीवन है, उसे मैंने शिद्दत से जिया है. मुझे अपनी सारी कृतियां अच्छी लगती हैं. जैसे मां अपने सारे बच्चों को प्यार करती है, वैसे लेखक भी अपनी सभी कृतियों को प्यार करता है. जब लोग 'मुर्दाघर' की तारीफ़ करते हैं तो मेरे अन्य पात्रों के साथ अन्याय हो जाता है. वे पात्र भी हमदर्दी के हक़दार हैं.

● **आपका प्रसिद्ध उपन्यास 'मुर्दाघर' इस सदी के श्रेष्ठ २५ उपन्यासों में जाना जाता है, आपको कैसा लगता है ?**

मैंने उन २५ किताबों की सूची नहीं देखी है. एक बात स्पष्ट कर दूं कि यदि उन २५ किताबों में वे किताबें हैं जो मुझे पसंद नहीं हैं तो सोचना पड़ेगा. बात तो अच्छी लगने वाली ही है, पर चुनने की कसौटी क्या है ? कहीं गुटबाज़ी तो नहीं है ? मैं उपन्यास पढ़ने का शौक़ीन रहा हूं, पर आज़ादी के बाद जो उपन्यास लिखे गये हैं, अधिकतर से निराश हूं. परंतु यह बड़ी बात है कि उन्होंने २५ उपन्यास निकाल लिये. मैं तो ८-१० से अधिक नहीं निकाल सकता. पता नहीं वे कौन से पंडित हैं, जिन्होंने २५ उपन्यास सर्वश्रेष्ठ घोषित किये हैं.

● **'मुर्दाघर' की भाषा, तेवर पर आज भी सवाल उठाये जाते हैं, इसकी कोई ख़ास वजह ?**

देखिए, भाषा जो है, वह अपने आप में कुछ नहीं हैं. आप जो पात्र, माहौल लेते हैं, वे वही भाषा बोलते हैं. झोपड़पट्टी की रंडियों से जो बुलवाना है, तो वह उनकी भाषा है, मेरी नहीं है. लेखक जहां वर्णन कर रहा है, वहां गाली नहीं है. जब पात्र बोलते हैं तो वह उनकी भाषा है. उसमें मैं दख़ल नहीं देता. जो लोग यह बात करते हैं, वे कुलीनता का आडंबर करते हैं. निम्न वर्ग का गुस्सा, प्यार, नफ़रत जब तीव्रता में व्यक्त होता है तो हमारे लिए गाली है, पर उनकी तो भाषा है. गालियां संवादों में आती हैं, उनके लिए यह मुहावरा है, अभिजात्य के लिए भले ही गालियां हों. एक पार्टी में ओमप्रकाश ने कहा कि ये गालियां राम-नाम लगती हैं. इनके माध्यम से भोले-भाले व्यक्तियों की भावनाएं व्यक्त होती हैं.

● **आपकी निगाह में आज का लेखन आपके समय के लेखन से किस प्रकार अलग है ?**

ये सवाल कहीं मेरी बढ़ती उम्र की ओर संकेत देता है, लेकिन मैं यह कहना चाहूंगा कि मैंने बदलते तेवर देखे हैं. जब मैं बहुत छोटा था, जब साहित्य में रुचि पैदा हुई तो इसके लिए मेरी मां काफ़ी ज़िम्मेदार है. उस समय का लेखन एक हथियार था. नयी-नयी आज़ादी मिली थी, उसके लिए लोगों में संघर्ष था. हिंदी में लेखन संघर्ष का सूचक बन गया था. आज़ादी के आस-पास, १९४८ - ५० और सन ६० तक मैंने एक ख़ास तेवर देखा है कि लेखन सोद्देश्य है, उसकी दिशा तय है. कुछ ने उसे प्रगतिवादी कहा. उस समय सारे के सारे लेखक, कवि अपने लेखन में एक लड़ाई लड़ रहे थे, न्यायपूर्ण संघर्ष, बेहतरी की लड़ाई थी, परंतु यदि वह युग मेरा था तो यह भी मेरा है. उस लेखन में सेबोटॉज रहा है. जनजीवन से संबंधित लेखन को ख़त्म करने के लिए जब कोई लेखन करता है तो उसे उत्तर आधुनिक आदि कहा जाता है. नयी कविता, नयी कहानी का उद्देश्य रहा है कि प्रगतिवादी लेखन को कंडम करें. नयी कविता, कहानी का जो आंदोलन है, उसे मैं आंदोलन न कहकर राजनीति कहूंगा. इनके आते ही लक्ष्य ख़त्म हो गया. लक्ष्यहीनता दिशा बन गयी. अब साहित्य संघर्ष नहीं रह गया. आंदोलनवाद की हवा चल पड़ी और लेखन की दिशा ही ख़त्म हो गयी. लेखन में बिखराव आया. यह इन आंदोलनों के प्रणेता की जीत है. नयी कविता, कहानी को राजनीति और धनाढ्य लोगों का प्रश्रय मिला. निराला जी की कविता दिशा देती थी, पर अज्ञेयजी की नयी कविता ने दिग्भ्रमित किया कि लेखन की दिशा ही नहीं होती. मेरे समय के लेखन में दिशा थी, पर आज के लेखन ने दिशा को ही तोड़ दिया. आंदोलनवादी साहित्य शुरू हुआ और ख़त्म हो गया. उसके बाद का जो दौर है, उसमें साहित्य वहां पहुंच गया, जो आज़ादी के बाद था. जब सर्वेश्वर जैसे कवि आये, उपन्यास के क्षेत्र में 'महाभोज', 'आपका बंटी' आये जो संघर्षशील धारा थी. जहां तक आज का सवाल है - अच्छा लेखन हो रहा है, पर दिशाहीन है. किसके दुःख-दर्द को लाया जा रहा है, क्या कर रहा है, उसे ही पता नहीं याने 'कन्फ्यूजन साहित्य' लिखा जा रहा है. मेरे हिसाब से इन बदलते तेवरों को मैंने देखा है.

● **आज के रचनाकारों में कोई रचनाकार आपको प्रभावित कर पाया है ?**

लेखन से पहले मैं पढ़ता बहुत था. उस ज़माने में प्रेमचंद, शरतचंद्र पसंदीदा थे. फिर रूसी, जर्मन साहित्य पढ़ा. मैं भाव-विभोर हो जाता हूं. तुर्गनेव, चेखव, फ्लॉबियर, एमिल जोला को पढ़ता था और विह्वल हो उठता था. जो पढ़ा है, उसका अवचेतन में प्रभाव रहा है. पर मुझे यह कहने में अफ़सोस हो रहा है कि इन रचनाओं के बाद जो पढ़ा है उसमें किसी ने प्रभावित किया हो. हां, 'महाभोज', 'आपका बंटी' ने बहुत प्रभावित किया. वैसे मैंने बहुत ज़्यादा पढ़ा भी नहीं है. मुझे स्वीकारोक्ति करनी चाहिए कि, मैंने जो उपन्यास पढ़े हैं, चार पेज पढ़कर छोड़ दिये हैं. उनमें पठनीयता नहीं है. एक प्रकार का नक़ली लेखन है, जिसे मॉडल बनाकर पेश किया जा रहा है. हिंदी लेखन चाहे उपन्यास हो या कविता, एक षड्यंत्र का शिकार हो गया है.

● **'मोहब्बत', 'गंदगी और ज़िंदगी' आपकी बेहतरीन प्रेम कहानियां हैं, आपके लिए प्रेम ज़िंदगी में क्या मायने रखता है ?**

प्रेम बहुत मायने रखता है. यह कहां है इसका पता लगा रहा हूं. मुझे जहां तक प्रेम का संबंध है तो मुझे एक ही शब्द याद आता है - मां. ख़ास तौर से वह प्रेम जो अहेतु हो. प्रेम कहीं आदमी को ऊपर उठा देता है. यतीम लड़के को एक रात वेश्या के साथ रहने पर उसे उस वेश्या से प्यार हो जाता है और वह बच्चा उस वेश्या के पति से लड़ पड़ता है. प्रेम बहुत बड़ी चीज़

है. इसकी ताक़त बहुत बड़ी है, पर आज फिल्मों में जो दिखाया जा रहा है वह प्रेम क़तई नहीं है. आज पुरुष के अंदर एक और पुरुष तथा नारी के अंदर एक और नारी है - याने प्रेम का जो रहस्यवाद है, बेकार है. प्रेम को ग्लोरीफाई न करें. देवदास इस तरह का उदाहरण है. हमारे यहां प्रेम के नाम पर पाखंड है. प्रेम के नाम पर जो रहस्यवाद आ रहा है, उसकी भर्त्सना की जानी चाहिए.

● **आपकी कहानियों में निम्न वर्ग, वेश्याएं, ग़रीब वर्ग ज़्यादा है, इसकी कोई ख़ास वजह ?**

इसकी एक वजह तो यह है कि मैं ख़ुद ग़रीब हूं. पहले ज़्यादा था, अब कम हूं. जो संपन्न लोग हैं, उनसे दिक़्क़त होती है. उनमें गहराई नज़र नहीं आती. पैसे वाले पात्रों में गुण नहीं देखे. निम्न वर्ग के लोग जो कठोर संघर्ष करते हैं, उनमें वेश्याओं में गुण दिखाई देते हैं. आप अगर उच्च वर्ग के बारे में लिखेंगे तो स्त्री-पुरुष का रोमांस, प्रेम संबंध लिखेंगे. वहां भ्रष्टाचार है. पर उनका दावा होता है सच्चे प्यार का. तो यह धोखा है. इसे लिखना कोई मायने नहीं रखता.

● **आप स्त्री-पुरुष की दोस्ती को किस रूप में देखते हैं ?**

प्रकृति ने स्त्री-पुरुष को बनाया है, प्रजनन के लिए बनाया है, ताकि जो प्रजाति है, वह चलती रहे. प्रकृति में प्रेम नहीं है, उसमें प्रजनन है, प्रजाति को बढ़ाने की प्रेरणा है. किसी भी प्राणी में देख लीजिए - मां की भूमिका होती है, पर पिता का कोई रोल नहीं है. हम मनुष्य हैं, अतः हमारे अंदर एक भावनात्मक लगाव उत्पन्न होता है. हम भौतिक लेवल से ऊपर बढ़ गये हैं. मेरे हिसाब से स्त्री-पुरुष की दोस्ती में यौनाकर्षण रहेगा. यह बात अलग है कि विवेक और उचित-अनुचित की सीमा को रखेंगे. मैं जब महिला या पुरुष से बात करूंगा तो मेरे रवैये में फ़र्क़ होगा. सुपर ईगो की वजह से अनुचित बात मन में नहीं आने देते. स्त्री-पुरुष की बात तथा पुरुष-पुरुष की बात और है पर स्त्री-पुरुष की दोस्ती में आकर्षण होगा ही. अधिकांश पुरुषों का दृष्टिकोण सेक्स का होता है. ख़ास तौर से इसमें हिंदी का लेखक शामिल है.

● **आपके फिल्मी दुनियां से रिश्ते रहे हैं, वहां के आपके अनुभव कैसे रहे ?**

फिल्म का माध्यम मुझे पसंद है क्योंकि वह व्यापक है और इस अर्थ में व्यापक है कि जन-साधारण तक पहुंचने में समर्थ है. यह लोक-माध्यम है, इसमें लोक-विधाओं का समावेश है. इस लाइन की मेरी सबसे बड़ी समस्या रही है कि यह लाइन आंख के अंधे, गांठ के पूरे वालों की है. उन्हें किसी विधा की समझ नहीं है. यहां तक कि फिल्म से पैसा कमाने की तमीज़ भी नहीं है. ५०- ६० के दशक का दौर बहुत अच्छा था. निर्देशक-निर्माता इस माध्यम को समझते थे. जन-साधारण तक गुणवत्ता कैसे पहुंचाई जाये, इसकी लड़ाई लड़ रहे थे. 'प्यासा' फिल्म साहिर की शायरी पर हिट फिल्म बनी. 'झनक झनक पायल बाजे' नृत्य पर बनी हिट फिल्म. बिमल राय जो लगातार साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाते रहे. राजकपूर ने अपने समय की सार्थक फिल्में बनायीं, पर आज के दौर की फिल्में दिवालियेपन का शिकार हैं. यह एक निर्माताओं द्वारा शोशा छोड़ा जाता है कि अच्छी कहानिया नहीं हैं. जब लेखक जाता है तो उनके पास कहानी सुनने का वक़्त नहीं है, इच्छा नहीं है. अंग्रेजी फिल्मों को कॉपी कर लेते हैं पर ये अच्छे कॉपी मास्टर भी नहीं हैं. मुझ जैसे आदमी को इस माहौल में घुटन होती है. उपन्यास लिख सकता हूं पर फिल्म नहीं बना सकता. अपनी कहानियां लेकर चुपचाप बैठा रहता हूं. यदि मुझे कहने दें तो मुझे फिल्म की समझ है. इसके बाद भी अगर मैं इन ज़रूरतों का ख़्याल रखते हुए भावनाओं के स्तर पर बात कहने की कोशिश करता हूं तो लोग सुनने को तैयार ही नहीं हैं. मुझे कई बार अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है. मेरे इस लाइन के अनुभव बहत अच्छे नहीं हैं.

● **आप मुंबई की साहित्यिक राजनीति पर क्या कहना चाहेंगे ?**

यहां पर जो साहित्यिक गतिविधियां हैं वे हिंदी अकादमी से काफ़ी कुछ जुड़ी हैं. होना यह चाहिए कि अकादमी राजनीति से निरपेक्ष होकर साहित्यिक गतिविधियों का आयोजन करे, लेकिन ऐसा होता नहीं है. मेरी अब तक यह समझ में नहीं आया कि महाराष्ट्र सरकार के बदलते ही साहित्य अकादमी क्यों बदल जाती है ? जब भाजपा और शिवसेना की सरकार थी तो इन राजनीतिक दलों के आदमी अकादमी चलाते थे, लेकिन जैसे ही सरकार बदली तो अकादमी के इन पदाधिकारियों ने इस्तीफ़ा दे दिया. उस समय व्यक्तिगत बातचीत एकेडमी के तत्कालीन प्रमुख शशिभूषण वाजपेयी से हुई. मैंने उस समय उनसे कहा कि ये क्यों ज़रूरी है कि आपकी सरकार बदल गयी है तो आप अकादमी से इस्तीफ़ा दे दें. उन्होंने कहा कि उनकी पार्टी का यही आदेश है. अब कांग्रेस की सरकार बनी तो कांग्रेस के समर्थक अकादमी के सर्वेसर्वा हो गये. साहित्य अकादमी का राजनीति से यह रिश्ता एक अजीब सी बात है. होना तो यह चाहिए कि साहित्य अकादमी दलगत राजनीति से निरपेक्ष होकर संचालित की जाये लेकिन यह मुंबई की साहित्यिक राजनीति ही है, साहित्य अकादमी पूरी तरह दलगत राजनीति से जुड़ी हुई है.

मुंबई में अनेक प्रकार के साहित्यिक पुरस्कार हर साल दिये जाते हैं. किस आधार पर दिये जाते हैं, यह स्पष्ट नहीं है. कुछ ऐसी धारणा बनती है कि व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर ये पुरस्कार दिये जाते हैं. अगर यह धारणा सही है तो यह साहित्य

की राजनीति है. इससे बचना ज़रूरी है. मुंबई शहर में सुरेंद्र वर्मा, पंडित आनंद कुमार वग़ैरह ऐसे साहित्यकार हैं जिनका साहित्यिक योगदान उन लोगों से कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण है जिन्हें अनेक प्रकार से पुरस्कृत किया जाता है. ज़रूरी है कि ये सारे पुरस्कार व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर न दिये जायें, साहित्यिक गुणवत्ता को मान्यता देने और बढ़ाने के लिए दिये जायें.

मुंबई शहर में कुछ लेखक संघ हैं, इनमें हल्की सी संकीर्णता नज़र आती है. ये संगठन आम तौर पर उन्हीं साहित्यकारों को महत्व देते हैं जो उनकी विचारधारा से पूरी तरह सहमत हों. ज़रूरी है कि असहमति का अनादर न किया जाये और एक समान मत रखने वाले कुछ थोड़े से लोगों की गुटबंदी से बचा जाये.

मुंबई का एक ऐसा साहित्यिक वर्ग है जो कुछ सरकारी और अर्ध सरकारी संस्थानों में हिंदी आदि का पदभार ग्रहण किये हुए है. एक ऐसी धारणा बनती है कि हिंदी अधिकारी के रूप में जो अधिकार इन्हें दिये गये हैं, वे उनका दुरूपयोग कर अपने आपको और अपने मित्रों को साहित्यिक क्षेत्र में प्रक्षेपित करने का प्रयास करते हैं. ये लोग प्रकाशकों से सीधी सौदेबाज़ी करते हैं और इस सौदेबाज़ी के दौरान अपनी कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करवाते हैं जिनका कोई महत्व नहीं है. इन्हें देशभर में मुफ़्त टेलीफोन करने की सुविधा भी मिली, उसका दुरूपयोग ये लोग एक साहित्य गुटबाज़ी के रूप में करते हैं ये रिवाज सा बन गया है कि पहले किसी प्रकाशक को पटाकर अपनी पुस्तक छपवाओ फिर ख़ुद ही उस पुस्तक पर गोष्ठी करवाओ. फिर उस गोष्ठी को समाचार पत्र-पत्रिकाओं में छपवाओ. यह एक प्रकार का साहित्यिक अनाचार है. इससे बचने की ज़रूरत है.

कुछ और लोग है जो थोक के भाव से लेखन करते हैं और अपने लेखन पर दूसरों से पुस्तकें लिखवाते हैं और जब ये ६०-७० साल के हो जाते हैं तो ख़ुद ही अपनी षष्ठी-पूर्ति वग़ैरह आयोजित करवाते हैं. यह भी एक अजीब सी बात है पर है ये मुंबई के साहित्य का एक आकलन.

● **अपने समकालीन रचनाकारों जैसे निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर के बारे में कुछ कहना चाहेंगे ?**

इनमें समकालीन कौन है ? निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर आदि ? इनके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है.

डॉ. जगदंबा प्रसाद दीक्षित

यूनिटी कंपाउन्ड, जुहू चौपाटी, मुंबई ४०० ०४९

श्रीमती मधु प्रकाश

ए १/१०१ रिद्धी गार्डन,
फिल्म सिटी रोड, मलाड (पू.), मुंबई ४०० ०९७.

लघुकथा

सर्विस बुक

आनंद बिल्थरे

दफ़्तरी दीनानाथ, चार वर्षों से अपनी पेंशन के लिए, दफ़्तर के चक्कर काट रहा था. छोटे बाबू से लेकर बड़े साहब तक उसने कई बार, गुहार लगायी. अपनी बीमार पत्नी और जवान बेटी का हवाला दिया लेकिन हर बार उसे, यही जवाब मिला कि सर्विस बुक नहीं मिल रही है. मिलते ही, पेंशन तय कर देंगे.

तीस वर्षों तक गधे की तरह, फाइलें ढोते रहने के बाद, अंत समय ख़ुद उसकी सर्विस बुक का खो जाना, एक ऐसा हादसा था, जिसने उसे तोड़कर रख दिया था. हर स्तर पर उसे नयी सर्विस बुक बनाने का आश्वासन दिया जाता. किंतु उसके पीठ फेरते ही मामला कर्ण के रथ की तरह अधर में लटक जाता.

पंद्रह दिनों पूर्व भूख और बेज़ारी से तंग आकर उसकी बेटी कहीं भाग गयी थी. सदमे ने पत्नी की भी जान ले ली. दीनानाथ अर्ध विक्षिप्त की सी स्थिति में पहुंच गया.

एक दिन, उसी अवस्था में, उसके पांव, दफ़्तर की ओर बढ़ गये. दफ़्तर के बाहर, सड़क से लगकर छोटी छोटी चाय-मंगोड़े की गुमटियां और पान के ठेले लगे थे. वह जाकर चुपचाप रामधन की गुमटी के पास बैठ गया. छोकरे ने आदतन, पानी का ग्लास सामने रख दिया. उसने एक ही सांस में ग्लास ख़ाली कर दिया.

दीनानाथ की आतें, भूख से छटपटा रही थीं. उसने जेब टटोली. उसकी अंगुलियां जेब के कोने में पड़े एक सिक्के से जा टकरायीं. निकालकर देखा तो वह दो रुपये का सिक्का निकला. उसने सिक्का, रामधन की ओर बढ़ा दिया. छोकरे ने काग़ज़ में, कुछ मंगोड़े लाकर, उसके हाथ पर रख दिये.

अभी उसने एक मंगोड़ा उठाकर मुंह में डाला ही था कि नज़र तेल-हल्दी से सने काग़ज़ पर पड़ी. एक जगह उसे अपनी सही भी दिखाई दी. उसने रामधन से चश्मा मांगा. उसने आश्चर्य से देखा कि उसके हाथ में, उसकी ही सर्विस बुक का पन्ना रखा है. उसकी आखों से, आंसुओं की धार बह निकली. उसने, मंगोड़े सहित, यह पन्ना अपने माथे पर दे मारा और वहीं, संज्ञाशून्य होकर, लुढ़क गया.

प्रेमनगर, बालाघाट-४८१ ००१ (म. प्र.)

तड़फता रहता है. वियोग की ऐसी स्थितियों को विजय अपनी कई कहानियों में सृजित करते हैं. संभवतः इसलिए कि दुःख व्यक्ति की संवेदनाओं को सर्वाधिक झकझोरता है. इस संग्रह की ऐसी ही एक और कहानी "हस्तांतरण" भी है. जो एक पारसी युवक और ईसाई युवती सूसन की प्रेमकथा है. दोनों के घरवाले इनके विवाह के सख़्त ख़िलाफ़ थे. लेकिन फिर भी वे विद्रोह करके विवाह करना चाहते थे. लेकिन एक हादसा हो गया. ये दोनों कथाकार को बंबई से दिल्ली आते हुए रेल में मिले थे. कथानायक अपनी आपबीती कुछ इस तरह सुनाता है - "रिश्ता बनने जा रहा था कि हादसा हो गया." फिर सिगरेट को दीवार में लगी ऐशट्रे में ठूंसते हुए उसने बताया कि उसकी अपनी एक दवाइयों की फैक्ट्री है और उसने ऑक्सफोर्ड में भी पढ़ाई की थी. सूसन ने बंबई से ही एम.बी.बी.एस. किया था. बचपन से एक दूसरे को चाहते थे. लेकिन रोज़गार में लगने के बावजूद काफ़ी दिन तक विवाह की जुस्तजू में वक़्त गुज़र गया. सूसन के घरवाले ईसाई थे और मेरे पारसी. इसलिए दोनों ही पार्टियां हम दोनों के विवाह का विरोध कर रही थीं. हार कर मैंने अपना एक फ्लैट लिया और सूसन हॉस्टल में रहने लगी. इक्कीस दिसंबर शादी की तारीख़ तय थी. पर सूसन विवाह से पूर्व प्रेम के चिरायु होने की शपथ ताजमहल में लेना चाहती थी. १० दिसंबर को हम दोनों कार से खंडाला गये. वहीं फिसली थी सूसन... मैं चीख़ता रहा... बड़ी मुश्किल से मदद मिली. फर्स्ट एड के उपरांत तुरंत बंबई लाया. सूसन के घरवाले झांके भी नहीं. प्रसिद्ध डॉक्टर फडनीस ने ऑपरेशन किया. जान बच गयी पर ज़िंदगी का अंत हो गया. अस्पताल से सूसन को घर ले आया. पूरे डेढ़ वर्ष से ऐसे ही अर्धमूर्छा में है. किसी ने कहा कि ताजमहल ले जाओ शायद हालत सुधर आये.

इन सभी कहानियों के शीर्षकों के ऊपर राज्यों के नाम चस्पां हैं, जिनकी पृष्ठभूमि पर ये कहानियां लिखी गयी हैं. लेकिन न जाने क्यों इनमें फणीश्वरनाथ रेणु जैसी आंचलिकता हर जगह आभसित नहीं होती.

विजय अपनी कहानियों में धर्म और उसके नियंताओं पर पुरज़ोर चोट करते हैं, जो उनकी कहानियों को वैचारिक दृष्टि से पुष्ट करती हैं. जैसे - "धर्म सिर्फ़ वोट हथियाने का तरीका रह गया है. बांटो, काटो और ऐश करो. "धर्म अब जेब का रूमाल हो गया है, जिसे मंदिर मस्जिद में लोग सिर पर रख लें और मौक़ा मिलते ही जूता साफ़ कर लें.", "विराट मंदिर के रूप में देवालय नहीं, अपितु धनोपार्जन के लिए कारख़ाना तैयार हो रहा है, वहां उपासना नहीं, व्यापार होगा." इसी प्रकार विजय प्रसिद्ध व्यक्तियों और उनके विचारों का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि "दुनिया का सबसे बड़ा मार्क्सवादी विवेकानंद था, जिसने कहा था कि मोक्ष का अर्थ है - दूसरों को रोगमुक्त, दुखमुक्त, अज्ञान से मुक्त करना. जब तक समता नहीं होगी, साम्य नहीं होगा तब तक धर्म का भी उत्थान नहीं होगा. अपने वैभव रूपी मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर. लोगों को स्वार्थ व भय से मुक्त कर."

जीवन सत्यों को अभिव्यक्त करती अनेक सूक्तियों से सजी ये कहानियां पठनीयता की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं. कुछ सूक्तियां मैं यहां उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं. उनमें से कुछ हैं - "स्वार्थ आदमी को धूर्त ही नहीं बनाता, अपितु अंधा भी कर देता है." (दूसरे बाबू जी) "भाव के अभाव में अनुभूति, सुख को आत्मसात नहीं कर सकती." (कोलिंस मैमोरियल) "जीवन का नाम ही विसंगति है." (अपनी-अपनी जिजीविषा). "जाति धर्म और वैभव तीनों ही प्यार के रास्ते में पहाड़ बन सकते हैं." (खोज) इन कहानियों को पढ़ते हुए मैं निरंतर सोचता रहा कि इन कहानियों को लिखने का क्या उद्देश्य है ? जैसा मैं समझ पाया कि ये कहानियां अपने समय की सच्चाइयों को बड़ी बेबाकी से अभिव्यक्त करती हैं और ज़िंदगी को आईना दिखाना भी तो कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है.

विमर्श, २८६, नया आवास विकास,
सहारनपुर-२४७ ००१

संभावनाएं जगाती कहानियां

✍ विजय

मुड़ती है यूं ज़िंदगी (कहानी संग्रह) : *डॉ. स्वाती तिवारी*
प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, दिल्ली - ११० ०९५ मू. : १२० रु.

डॉ. स्वाती तिवारी अपनी बहुमुखी प्रतिभा के लिए साहित्य में जानी जाने योग्य हस्ताक्षर की तरह उभर रही हैं. चार प्रमुख अख़बारों में स्तंभ लेखन के साथ व पटकथा लेखन में भी संलग्न हैं. कहानी के दरवाज़े पर अछूते विषयों को लेकर उन्होंने दस्तक देना शुरू कर दिया है. 'मुड़ती है यूं ज़िंदगी' उनका तीसरा कहानी संग्रह है जो कथा लोक में उनकी उपस्थिति दर्ज कराने की संभावनाएं जगाता है. साहित्य जगत में अलग अलग क्षेत्रों और विषयों को पढ़कर आये रचनाकारों का सहयोग उसे परिपूर्णता की तरफ़ ले जाता है. डॉ. स्वाती तिवारी एम. एस. सी. (प्राणिकी) हैं इसलिए सोच का रवैया विश्लेषणात्मक है एवं प्रवाह के विरुद्ध रचना प्रक्रिया का साहस भी उनमें मौजूद है. फिर भी सामाजिक ढांचे को तोड़फोड़ कर फेंक देने की जगह परिवर्तन और नूतन विन्यास पर वे आग्रह रखती हैं. वे महसूस करती हैं कि भावनात्मक द्वंद्व से ही संघर्षों की उत्पत्ति होती है जो बाद में परिवर्तन के मूल स्रोत बनते हैं. कहानी भी एक सहायक धारा की तरह मनुष्य के सोच को मांजती है और परिवर्तन का फ़लक प्रदान करती है.

प्रस्तुत संग्रह में सत्तरह कहानियां हैं जो गृहस्थ-जीवन के गुंफन में एंठी हुई रस्सियों की जकड़न से उभरती हैं और एक

सैद्धांतिक निष्कर्ष पर पहुंचाने की कोशिश करती हैं. कहीं कहीं, ज़िंदगी की मूर्ति खरौंच न खा जाये इस ऐहतियात में लेखकीय हस्तक्षेप कुछ ज़्यादा ही कर जाती हैं. शायद रचनाकार को सर्जक इसीलिए कहा जाता है कि वह भी विधाता की तरह अपनी निर्मित मूर्ति (चरित्र) को अपनी यात्रा पूर्ण करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देता है. पात्र लेखक का होता है जिसे वह कहीं से उठाकर अपने अंदर जीता है मगर रचनाकार के पास महावत की तरह हाथी को दिशा निर्देशन के लिए लगातार अंकुश चलाने वाली प्रकृति नहीं होती है. पात्र की स्वतंत्रता हरण का अधिकार लेखक अपने पास नहीं रखता है. नारी मन इस कठोर यथार्थ को धीरे धीरे ही अपना पाता है.

'मुड़ती है यू ज़िंदगी' एक दृढ़निश्चयी युवती के साहस की कहानी है जो ज़िंदगी के पलायन से ज़्यादा संघर्ष को उपयुक्त समझती है. एक असफल प्रेम से अधूरी रह जाने वाली ज़िंदगी को अनाथ बच्चों को प्रेम के सहारे सनाथ बनाने में अपनी पूर्णता महसूस करती है. उन किलकारियों में अपना दर्द भूलने में सफल हो जाती है और वहीं उसे वह बच्चा भी मिल जाता है जो उसके ज़बरदस्ती अलग किये गये प्रेमी और उसकी पत्नी से उत्पन्न हुआ था. उस बच्चे के द्वारा वह अपने प्रेमी को भी एक तरह से पा लेती है. कहानी का अंत मगर एक विशाल सुख को ऐसे बच्चे से मिलाकर छोटा कर देता है. चरित्र के प्रति लेखकीय मोह और हस्तक्षेप उसे बौना बनाकर क़द को छांट देते हैं. फिर भी कहानी अपना असर बनाये रखती है.

'चांद पर दाग़' में रचनाकारा उस नारी जाति को नहीं बख़्शती है जो पति को मात्र ज़रूरतें पूरी करने का साधन बनाती है और पूर्व प्रेमी के साथ सुख बोध में लिप्त रहती है. पति के प्रति अन्याय एक मजबूरी की तरह धारण किये रहती हैं. स्वार्थी होते समाज के लिए यह कहानी एक ख़तरे की घंटी की तरह है. स्त्री विमर्श पर निरंतर छप रही कहानियां एक पक्षीय रूप धारण करके संवेदना को नारी के प्रति मोड़ने का प्रयास कर रही हैं. उनमें पुरुष पक्ष को निर्दयता से निरंकुशता का जामा पहनाया जा रहा है. कभी कभी तो ऐसा लगता है कि नारी को समानता तब ही प्राप्त हो सकेगी जब वह पुरुष पर बलात्कार करने में सक्षम होगी. मगर सिक्के के दो पहलू होते हैं... संभावित यथार्थ में रचनाकार की दिव्य दृष्टि की पाठक सराहना करता है जब वह महसूस करता है कि ऐसा भी हो सकता है, जैसा कि लेखिका ने लिखा है.

शहर पहुंच कर अपने अंदर गांव को जीते हुए लोग जगह-जगह हर शहर में आपको मिल जायेंगे. गांव वापस न जाने की मजबूरी असल में मात्र एक बहाना भर होती है. ऐसे लोगों का ही शहरीकरण बड़ी द्रुतगति से होता है. ज़रूरत के नाम पर शहर में जड़ जमाने के लिए ऐसे लोगों के पास सबसे आसान तरीक़ा होता है गांव से पूरी तरह छुटकारा और इसके लिए सहज साधन है गांव की ज़मीन और मकान बेचकर छुट्टी करना. शहरी ज़रूरतें पूरी करने की मजबूरी के पीछे गहरा खोखलापन होता है. यह कहानी इस दीवालियेपन को दर्शाती हुई सामने आती है मगर गागर में सागर भरने के चक्कर में 'दूसरी औरत' के प्रकरण में उलझ कर मूल यथार्थ से भटक जाती है. नैसर्गिकता की हरियाली भूमि से नाटकीय रेगिस्तान की तरफ़ मुड़ जाती है.

ऐसे ही 'कुलच्छनी' में एक तरफ़ पुरुष और नारी के मध्य रुकावट बने जातीय ढांचे को लेखिका तोड़ती है वहीं उस स्त्री को चरित्रहीन बनाकर मूल्य स्थापना के चक्कर में वर्ण और वर्ग संघर्ष के पथ को त्याग निष्ठनुराग से वशीभूत हो विमर्श प्रस्तुत करती है... घर की देहरी लांघ, रोते बच्चे, बीमार सास और भोलाभाला पति छोड़ जो औरत पराये मर्द की देहरी में क़दम रखती है उसकी यही गति होती है. निरंकुश निर्णय के पीछे व्यथा और मनोविज्ञान पर रचनाकार की दृष्टि क्यों नहीं गयी ?

'पलायन' में दरिद्रता में आकंठ डूबे परिवार में पुरुष की निरंकुशता से भागी स्त्री के पलायन का ज़िक्र है मगर इससे दारुण है परिणाम... शिक्षित होती बेटी का स्कूल छोड़कर बर्तन मांजनेवाली बनना. यह कहानी हमारे देश की गुलाम संस्कृति का प्रतीक बनकर सामने आती है... अशिक्षित वर्ग और जाति मुग्ध समुदाय वोट डालकर उन्हें ही सिंहासन पर बैठा देता है जो शोषित वर्ग की समस्याओं की जगह दलाली से अपना कोठार धन से परिपूर्ण करते रहते हैं. इस यथार्थ को पूरी तरह वियतनाम में होचीमिन्ह ने समझा था, इसीलिए अमरीका जैसे शक्तिशाली दुश्मन से लड़ते हुए भी अशिक्षा के ख़िलाफ़ समांतर युद्ध को प्राथमिकता दी थी.

इस संग्रह की शेष कहानियां भी अनुभव जगत और आम सोच के फ़लक पर जन्म लेती हुई फलती फूलती हैं. आम, नीरस, घटनाविहीन ज़िंदगियों से पात्रों को उठाकर कहानी का तानाबाना बुनना एक बड़ी बात है मगर उन कहानियों में सूक्ष्म धागों का बार बार उलझ के रह जाना जल्दबाज़ी के अंदर क्षमायोग्य बात नहीं है. इस बात को हर लेखक को स्वीकार करना ज़रूरी है. देर आयद दुरुस्त आयद या जल्दी का काम शैतान का, ये युक्तियां कोरी कल्पनाओं पर आधारित नहीं हैं.

संग्रह की अंतिम कहानी 'एक नया रिश्ता' एक बोल्ड रचना है जिसमें घर की चहारदीवारी में वैधव्य के आंसू नारी को मूक बना देते हैं और दूसरों की उपस्थिति में उस बेचारी के पास कहने को होते... मात्र अपने जीवन के संस्मरण ! उसकी विवाहिता युवा पुत्री इस प्रेत छाया से उसे छुड़ाने के लिए अपनी मां का विवाह एक विधुर से करा देती है. अंधेरे रोशनी में बदल जाते हैं मगर लेखिका का नारी मन उस नव सुख से ज़्यादा परिचित नहीं है इसलिए वह अपनी नवविवाहिता मां को दुर्घटना में मार देती है मगर गर्मी की छुट्टियों में उसके बच्चे नानी के दूसरे पति के घर पहुंच वहां के लोगों को अपनी किलकारियों से

ख़ारिज़ कर देते हैं. कहानी के दूसरे हिस्से से जो रचनाकार कहना चाहता था क्या वह मां को ज़िंदा रखके नहीं कह सकता था ? जहां न पंहुचे रवि वहां पहुंचे कवि ! मगर कहानीकार का विजन स्वतंत्रता लेते हुए भी गहराई की पड़ताल करके ही उस पर कहानी की इमारत बना सकता है.

प्रस्तुत कहानियों में कुछ ज़्यादा ही कह जाने का लोभ लेखिका संभाल नहीं सकी है. कहानीकार को रेजर लेकर कथा की देह पर लटकती त्वचा की अतिरिक्त परतें छील देना चाहिए अन्यथा जब ये काम कोई समीक्षक या आलोचक करता है तो कई जगह से ख़ून भी रिसने लगता है. 'पलायन' जैसी कहानियों के साथ न्याय करनेवाली लेखिका बड़ी आसानी से 'मुड़ती है यूं ज़िंदगी' या 'चांद पर दाग़' जैसी कहानियों का क़द भी ऊंचा रख सकती थी.

यह सही है कि लेखिका के पास अपना निजी अनुभव जगत है, अपनी बात कहने की तहज़ीब है और घर का अर्थ उनकी निगाहों में इनसानी ज़िंदगी से बनता है न कि निर्जीव छत और दीवारों से. उसके अंदर प्रवाह के विरुद्ध पतवार चलाने का साहस भी है मगर सर्वहारा वर्ग की जगह वर्ण व्यवस्था के राक्षसों की उठान, आम आदमी का दोहन करते बाज़ार और बेईमान होते समाज के परिदृश्य उसकी क़लम से न छूटते. प्रेमचंद के काल का शोषित समाज आज पहले से ज़्यादा असहाय है. अंधेरा और बढ़ा है.... ऐसे में कहानीकार को बदबूदार गलियों से गुज़रना बहुत ज़रूरी है.

प्रस्तुत संग्रह की कहानियां मामूली तराश के बाद अहम यथार्थ को कहने में समर्थ हैं. इसीलिए लेखिका से और बेहतर कहानियों की मांग साहित्य की दरकार है. अपार संभावनाएं जगाती हैं ये कहानियां... आशा है कि स्वाती तिवारी पाठकों की ख़्वाहिशें पूरी कर सकेंगी.

११५ बी, पॉकिट जे एंड के,
दिलशाद गार्डन, दिल्ली-११० ०९५

एकलव्य : एक सार्थक सृजन-अनुष्ठान

✍ डॉ. भगीरथ बड़ोले

एकलव्य (लघुकथा एवं काव्य-संग्रह) : *श्री महीपाल भूरिया व रामशंकर चंचल*
प्रकाशक : शबरी कला मंडल, एम. सी. कंपाउंड, झाबुआ-४५७ ६६१. मू. : १०० रु.

'एकलव्य' आदिवासी अंचल झाबुआ से श्री महीपाल भूरिया एवं श्री रामशंकर चंचल के संपादकत्व में प्रकाशित लघुकथाओं एवं कविताओं का संग्रह है, जिसमें देशभर के रचनाकारों को सम्मिलित किया गया है. इस प्रकाशन के पीछे संपादक श्री भूरिया का मानना है कि आज हिंदी के प्रतिष्ठान व्यवसायीकरण की ओर बढ़कर हिंदी रचना के स्तर को गिरा रहे हैं. ऐसे में इस धारा को नगर की अपेक्षा आंचलिकता से जोड़ने पर ही साहित्य अपने गौरव को पा सकता है. कुछ ऐसा ही स्वर दूसरे संपादक श्री रामशंकर चंचल का भी है. वे भी मानते हैं कि आज के तथाकथित रचनाकार भाषा-शैली के प्रयोगधर्मी चमत्कारों के व्यामोह में साहित्य रचना के मूल उद्देश्य से भटक गये हैं. कोरा यथार्थ चित्रण साहित्य का लक्ष्य नहीं है, अपितु वही साहित्य श्रेष्ठ है जो आस्था और विश्वास से मनुष्य को मूल्यों की ओर सहज रूप से मोड़ने में सक्षम हो. वे भी आंचलिक लेखन की ही आवश्यकता निरूपित करते हैं. स्पष्ट है कि संपादक द्वय का सोच और उद्देश्य, स्वस्थ साहित्य रचना के अभिलक्ष्यों के समीप है.

इस कृति के सभी रचनाकार आंचलिक परिवेश के रचनाकार नहीं हैं, अतः उनसे वैसी अपेक्षा करना भी व्यर्थ है. वे सब महज़ आंचलिक क्षेत्र के प्रकाशन-प्रयत्न से ही जुड़े हैं. यदि संग्रह की रचनाओं को देखा जाये तो भी यही लगेगा कि अधिकांश रचनाएं समकालीन धारा के अनुरूप चली हैं, किसी आंचलिक प्रतिबद्धता को लेकर नहीं. फिर भी इनमें प्रत्यक्ष या परोक्ष, स्वस्थ मानव मूल्यों का आग्रह बराबर दिखाई देता है. इस कृति का पहला खंड लघुकथाओं से संबद्ध है तथा दूसरा काव्य खंड है.

जहां तक लघुकथाओं का सवाल है, विगत कुछ वर्षों से इस साहित्य रूप ने अत्यधिक लोकप्रियता अर्जित की है. परिणामतः कितनी ही कृतियां प्रकाशित हुईं. कितनी ही पत्रिकाओं ने अपने विशेषांक निकाले और कितने ही शोधार्थियों ने इस दिशा में रचना के रहस्यों को जानने का प्रयास भी किया है. वैसे सामान्यतः लघुकथा अपने छोटे आकार से पहचानी जाती है. किंतु यही उसके लिए काफ़ी नहीं है. उसे रचनारूप में ढालने में कथा के सभी तत्वों का योगदान आवश्यक होता है. चाहे वह योगदान सांकेतिक रूप में ही हो, पर इससे ही गागर में सागर भरने की कुशलता ज़रूरी है. इस दृष्टि से यदि इस संग्रह के चौंतीस लेखकों की छियत्तर रचनाओं का अवलोकन किया जाये तो ज़्यादा निराशा अनुभव नहीं होती.

प्रस्तुत संग्रह की तमाम लघुकथाएं विविध विषयों एवं शैली-वैविध्य को लेकर रची गयी हैं तथा इनमें से कई प्रभावित भी करती हैं. ये तमाम लघुकथाएं आज के राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्यों को जीवंतता के साथ सामने लाती हैं. वस्तुतः आज की जीवन-स्थितियां अत्यंत रहस्यमय हैं. जीवन के किसी भी क्षेत्र को देखें, सर्वत्र एक बदली हुई स्थिति नज़र आती है. कृष्ण मनु, मुकेश रावल आदि जीवन पर ऐसे प्रबल व्यंग्य प्रहार करते हैं. सर्वत्र भ्रष्टाचार भारी रूप में हावी है. डॉ. सरला अग्रवाल, डॉ. सुधा जैन आदि इसी दिशा में संकेत करते हैं. इसके पीछे

राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में व्याप्त मूल्यहीनता अधिक प्रभावी है. श्री योगेंद्र नाथ शुक्ल, श्री अशोक अंजुम, वीरेंद्र सिंह गूंबर, डॉ. के. रानी, विजय डागा, वीर गोविंद शेनाय की लघुकथाएं इसका साक्ष्य देती हैं. इधर समाज में सांप्रदायिकता की चहलपहल है, अंधविश्वासों का साम्राज्य है, नयी पीढ़ी का बदला रवैया भी ज़िम्मेदार है. डॉ. सतीश दुबे, संतन सिंह, अशोक गुजराती, सुरेश शर्मा की लघुकथाएं इसी बात को व्यक्त करती हैं. पूरा समाज संवेदनहीन हो गया है. इंसानियत की उपेक्षा व पैसे के लगाव ने आम लोगों का जीना दूभर कर दिया है.

जीवन को जीने की आपाधापी के बीच ग़रीबी और उसके दुख-दर्द निरंतर बढ़ते जा रहे हैं, जिसे श्री महीपाल भूरिया, रामशंकर चंचल ने ठेठ ग्रामीण परिवेश में प्रस्तुत किया है. श्री सी. एल. सांखला, सचिन रावत भी इसी ओर संकेत करते हैं. जहां वृद्धों का जीवन दुर्दशा ग्रस्त है वहां नारी का जीवन और भी कष्टप्रद हो गया है. श्री रामशंकर चंचल, डॉ. इंदिरा अग्रवाल, सूर्यकांत नागर, सुरेश शर्मा तथा रमेश मनोहरा की रचनाएं समाज की इसी दशा को वर्णित करती हैं. कहीं यह उपेक्षित पुरुष की अहंमण्यता के आगे परवश है तो कहीं परिस्थितियां उसे इन दुश्चक्रों में डाल देती हैं. श्री योगेंद्रनाथ शुक्ल, महिपाल भूरिया, रामशंकर चंचल, रमेश मनोहरा ने दीन-हीनों के जीवन में जारी शोषण चक्र को बड़े प्रभावी तरीक़े से व्यक्त किया है. श्री अशोक गुजराती इसी क्रम में नयी पीढ़ी के बदलते रवैये पर भी प्रहार करते हैं.

बावजूद इसके 'एकलव्य' के लघुकथा कर्मियों ने अपने दायित्व बोध को बराबर याद रखा है, इसलिए यहां ग़रीबों की क्रांति रूपायित हो सकी है. श्री चंद्रसिंह तोमर, महीपाल भूरिया, रामशंकर चंचल तथा संतन सिंह ने उस क्रांति को मुखरित किया है तो श्री अर्जुन सिंह 'अंतिम', इंदु सिन्हा और डॉ. सतीश दुबे ग़रीबों की कर्मठ ज़िंदगी का आलेखन प्रस्तुत करते हैं. डॉ. नरेंद्र मिश्र, सुनहरीलाल शुक्ल एवं कमल चोपड़ा जहां मूल्य-मर्यादाओं की पक्षधरता को प्रत्यक्ष करते हैं, वहां यू.एस. आनंद, सी.एल. सांखला, संगीता कटारा आदि स्वस्थ बदलाव को सामने लाते हैं.

इस प्रकार 'एकलव्य' की लघुकथाएं विविध संदर्भों को व्यक्त करने के बाद भी अपनी मूल्य-चेतना-संपन्न रचनाधर्मिता को ही आकारित करती हैं. स्पष्ट है कि इन रचनाकारों को अपने दायित्व का भान है, इसीलिए सर्वत्र ही समाज के प्रति इनकी ज़िम्मेदारी कहीं सीधे-साधे तो कहीं संकेतों के माध्यम से प्रगट होती है. इस क्रम में कही वांछित कसावट है तो कहीं वर्णन विस्तार से शिथिलता भी उपलब्ध होती है. इस दिशा में रचनाकारों से अपेक्षित परिश्रम वांछित है.

'एकलव्य' का दूसरा प्रभाग 'शबरी' शीर्षक के अंतर्गत काव्य-विधा से जुड़ा हुआ है. साहित्यिक संदर्भों में जहां तक काव्य का प्रश्न है, यह मूलतः संवेदना को आधार बनाकर प्रस्तुत की गयी वह प्राचीनतम विधा है जहां सार्थक-सांकेतिक शब्दों की भावगत साधना प्रमुख मानी गयी है. अन्य साहित्य-विधाओं की अपेक्षा इसमें जहां छंद या लयात्मकता का ध्यान बेहद ज़रूरी है, वहां कसावट से भरा पूरा सटीक शब्द विधान अपने सौंदर्य से काव्य प्रभाग में प्रस्तुत छांछठ रचनाकारों की शताधिक रचनाओं का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि वर्तमान परिदृश्य के दबावों ने संवेदनशील कवियों को अधिक प्रभावित किया है. परिणामतः भावुकता के प्रसंग यत्र-तत्र-सर्वत्र हैं.

वर्तमान परिदृश्यों के दबाव के अंतर्गत प्रायः सभी को यह अनुभव होता है कि आज दुनिया बहुत बदल गयी है तथा विसंगतियां ज़ोर शोर से मनुष्यता के मान-मूल्यों को लीलती जा रही हैं. ये सभी बातें कहीं छंद रूप में व्यक्त हुई हैं तो कहीं मुक्त छंद में, कहीं क्षणिकाओं द्वारा तो कहीं हाइकुओं के माध्यम से. तात्पर्य यह कि कवियों ने विविध रूपों में अपने समय का अंकन किया है. डॉ. महेश दिवाकर, डॉ. नरेंद्र मिश्र, श्री चंद्रसेन विराट, घमंडीलाल अग्रवाल, मुकेश रावल, माताचरण मिश्र, उपेंद्र पांडे आदि ने अपनी रचनाओं में यथार्थ की अभिव्यंजना करते हुए व्यक्त किया है कि सर्वत्र छल, पाखंड, धोखा और परायापन अपना साम्राज्य बनाये हुए है. पूरी दुनिया सपनों की क़त्लगाह हो चुकी है, जहां आदमी की आदमी से दूरियां साफ़ नज़र आती हैं. एक ओर वह अस्वाभाविक जीवन जी रहा है तो दूसरी ओर मानवीयता के संदर्भ उससे विलग होते जा रहे हैं. पूरे ज़माने के जंगल हो जाने के कारण पूरी सदी ही विकलांग नज़र आती है. वस्तुतः इन स्थितियों में जीना ही समस्या बन चुका है और कवि इससे व्यथित हैं.

यदि राजनीति की ओर ध्यान दें तो ज्ञात होता है कि युग की तमाम विसंगतियों के फैलाव में राजनेताओं की भूमिका अहम है. श्री प्रभु त्रिवेदी, रमेश मनोहरा, अरुणेंद्र चौरसिया आदि ने खुल कर इन नेताओं की करतूतें खोली हैं. आज के स्वार्थी नेताओं को दुनिया के दुख-दर्द की कोई चिंता नहीं है. अगर इन्हें चिंता है तो महज येनकेन प्रकारेण चुनाव जीतने की, जिसके लिए ये हर बार जनता को अपने दोग़ले व्यक्तित्व से बेवकूफ़ बनाते रहते है. न कहीं सत्य है, न न्याय और न कहीं समानता की बात. इसकी अपेक्षा पूरे प्रदूषित वातावरण के बीच समाज में शोषण का क्रम अनवरत जारी है. श्री महीपाल भूरिया एवं रामशंकर चंचल ने विशेषकर आदिवासी अंचलों के रहवासियों के दुख-दर्द को अभिव्यंजित करते हुए अपनी विविध रचनाओं द्वारा शोषण के दुश्चक्र को प्रभावी रीति से रेखांकित किया है.

इन स्थितियों के कारण भारतीय ग्रामीण क्षेत्र से उसकी सहजता ही लुप्त नहीं हो रही है, जीना भी दुर्वह होता जा रहा है. आदिवासियों और नारी की जीवन दशा अंतर्वेदना से भरी पड़ी है. श्री राजकुमार कृषक, संतोष चौहान, अरुणेंद्र चौरसिया ने नारी की दुर्दशा को दृष्टिपथ में रखकर लिखा है कि ये निरंतर

श्रमरत रहकर भी युगों से उपेक्षित हैं. एक ओर अनेक कष्ट सहकर भी उन्हें अपने परिवार की मानमर्यादा और स्वाभिमान का ध्यान है तो दूसरी ओर वे ही अत्याचारों के लपेट में कहीं अधिक हैं. इस क्रम में श्री अरुणेंद्र तो प्रश्न भी उठते हैं जो देश नारी के सशक्तिकरण का समर्थक है, वहीं उस पर इतने ज़ुल्म क्यों, इतना निरंतर शोषण क्यों ? सुश्री निर्मला जोशी, सुश्री प्रेरणा तथा अशोक गीते की रचनाओं में निहित अंतर्व्यथाओं में भी कहीं न कहीं समाज और व्यक्ति की दुरावस्था ही झलकती है.

दुख-दर्द के इन चित्रों के साथ-साथ इस संग्रह के रचनाकारों ने इनके विरुद्ध नयी चेतना जगाने की बात भी कही है. शहीदों का सम्मान करने वाले प्रत्येक कवि का मानना है कि देश ही अंततः बड़ा होता है, अतः लोगों की दशा सुधारना है, समाज में सद्भाव बढ़ाना है और मनुष्य को आदर्श के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करना है. डॉ. चंद्र सिंह तोमर, सी. एल. सांखला, पी. सी. कोंडल तथा महाश्वेतादेवी की रचनाएं इन्हीं मर्यादाओं को आकार देती हैं तो रवींद्र नारायण तथा संदीप तोमर पूरे वातावरण में जीवन की रंगीन रोशनी भरने के लिए कटिबद्ध नज़र आते हैं. अन्य संदर्भों में श्री रमेश चंद्र शर्मा, अर्चना सक्सेना, कृष्णाखत्री, महीपाल भूरिया तथा रामशंकर चंचल ने अच्छे प्रकृति-चित्र प्रस्तुत किये हैं. इसी क्रम में अशोक लव, उपेंद्र पांडेय आदि की रचनाएं प्रेम-संदर्भों का संपादन करती हैं.

कहने का तात्पर्य यह कि 'शबरी' शीर्षक के प्रस्तुत काव्य प्रभाग में कवियों ने जीवन को अलग अलग रूप में देखकर भी सर्वत्र अपने दायित्व बोध का ध्यान रखा है. यद्यपि इन तमाम कवियों में अधकचरा कोई नहीं है, तथापि अपनी प्रातिभ क्षमता दिखाने में कतिपय को परिपक्व भी नहीं कहा जा सकता. वस्तुतः काव्य की साधना अत्यंत कठिन है और उसमें कठिन जीवन का अंकन तो और भी मुश्किल का काम. अतः कवियों से पर्याप्त परिश्रम की अपेक्षा करना अयुक्तिसंगत नहीं है.

अंततः यदि 'एकलव्य' को समग्रतः में देखा जाये तो सर्वप्रथम इतने सारे रचनाकारों को एक सूत्र में बांधकर उन्हें सुरुचिपूर्णता के साथ प्रस्तुत करने के उपलक्ष्य में संपादक द्वय बधाई के हक़दार हैं. विश्वास है कि यह सृजन-अनुष्ठन अपने नैरंतर्य को बराबर क़ायम रखेगा. किंतु अब संपादकों को अच्छी रचनाओं के चयन की दिशा में काफ़ी सजग रहना होगा साथ ही उन्हें ध्यान देना होगा कि किस उद्देश्य को दृष्टिपथ में रखकर वे यह प्रकाशन प्रस्तुत कर रहे हैं. यदि कुछ सतर्कता और कुछ निष्पक्ष निर्ममता बनी रही तो आगामी एकलव्य के अनुष्ठन-क्रम में विकास की रेखाएं स्पष्टता से बिंबित हो सकेंगी. वैसे आज के व्यावसायिक युग में भी दोनों संपादकों ने इतने सारे रचनाकारों को समेटते हुए जो उपक्रम किया है, वह बहुत बड़ी बात है.

२८६, विवेकानंद कॉलोनी,
फ्रीगंज, उज्जैन-४५६ ०१० (म. प्र.)

अनुभवों के अनूठे संसार की ग़ज़लें

गोवर्धन यादव

दीवार में दरार है (ग़ज़ल संग्रह) : *गोपालकृष्ण सक्सेना 'पंकज'*
प्रकाशक : मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली - ११० ०३२
मू. : १५० रु.

ग़ज़ल की दुनिया में श्री गोपालकृष्ण सक्सेना 'पंकज' एक ऐसे अज़ीम शायर का नाम है जिसे किसी परिचय की दरकार नहीं है. अपने जीवन के सत्तरवें वर्ष में उनका पहला ग़ज़ल-संग्रह 'दीवार मे दरार है' मेधा प्रकाशन दिल्ली से छपकर आया है, जिसमें ६१ बेहतरीन ग़ज़लें, मुक्तक और छंद संकलित हैं.

वर्षों इंतज़ार के बाद उनका यह प्रथम संग्रह जहां सुधी पाठकों और उनके चाहने वालों को एक सुखद अहसास से भर देता है, तो वहीं उनके मन में यह प्रश्न भी तैरने-उतरने लगता है (जो स्वभाविक भी है) कि आपने इतने दिनों तक हमें उस निर्वचनीय सुख से वंचित क्यों रखा ?

प्रकृति से धीर-गंभीर पंकज जी ग़ज़लों के लिए नयी-नयी दिशाएं तलाशते रहे और उन जगहों को तलाशते रहे जो अन्य शायरों की नज़रों से अछूती रह गयीं या फिर नज़रों के सामने से ओझल. शायद वे हड़बड़ी में भी नहीं थे, ठीक उस नदी की तरह जो पहाड़ों से उतरते हुए शोर तो मचा ही रही थी, साथ में उछलकूद भी करती जा रही थी. उन्होंने कभी उतावली नहीं दिखाई और न ही उस दौड़ में शामिल हुए जिसका ट्रैक एक सीमा तक जाकर या तो ठहर जाता है अथवा समाप्त हो जाता है. उनकी ग़ज़लरूपी नदी ने अपनी लंबी यात्रा के बाद वह जगह पा ली थी, जहां गहराइयां थीं, उसने उस गहराई को छू लिया था, जहां उसका अपेक्षाकृत शांत स्वरूप दिखलाई देता है, और विस्तार के साथ ही उसका प्रवाह भी अंदर-अंदर सतत चलता रहता है.

पंकज जी की ग़ज़लें पाठकों को ऐसे भावालोक में ले जाती हैं, जहां पहुंचकर ग़ज़लें उनकी अपनी न होकर पाठकों की हो जाती हैं. वे अपना रचना-संसार और संवेदनाओं को विराट-फ़लक पर यथार्थ से जोड़ देने की पहल ही नहीं करते बल्कि उसे स्थापित भी करते हैं. यह तभी संभव हो पाता है, जब ग़ज़लकार प्रकृति से प्यार करता है - प्रकृति में अपने प्रिय को देखता है और प्रकृति को अपने भीतर भी महसूसता है.

अपने पूर्वकथन में पंकज जी ने अपने गुरू फ़िराक़ साहब को इस बात के लिए श्रेय दिया है कि उन्होंने ही आपको ग़ज़ल के घर का पता दिया और वे उसे खोजने के लिए अमरूदोंवाले बाग में जाया भी करते थे.

अपनी उमर के इक्कीसवें पड़ाव पर ही पंकज जी की ग़ज़लें देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में सादर छपने लगी थीं. उनकी ग़ज़लें न सिर्फ़ दूरदर्शन और रेडियो के माध्यम से सारी हदों को पार कर चुकी थीं, वहीं वे मंचों पर बड़ी आत्मीयता व सम्मान के साथ दोहराई जाने लगी थीं. इतना ही नहीं बल्कि अनेक कंठों ने उन्हें अपनी आवाज़ में पिरोकर अपने को धन्य माना. शायद यह प्रमुख वजह थी या रही होगी कि आपने अपनी ग़ज़लों के संग्रह नहीं निकाले. न तो जल्दबाज़ी की और न ही उतावलापन दिखाया.

आज के इस टेढ़े-मेढ़े समय में पंकज जी को समझ पाना इतना आसान व सरल है जैसे हवा की छुअन को शिद्दत के साथ महसूस किया जा सकता है. बड़ी ही कुशलता के साथ वे उन छोटे-छोटे शब्दों में इतनी गहरी समझ पिरो देते हैं कि संभव को भी असंभव और असंभव को संभव में ढाल देते हैं. उनकी ग़ज़लों के अनंत-प्रवाह में अनुशासन होता है. साथ में रचना-प्रक्रिया में अनुभवों का अनूठा संसार. ग़ज़लों को अच्छी से बेहतर बनाने का वह तत्व जो जीवन कहलाता है - जीने का तरीका सिखाता है. तरीक़ा ही नहीं सिखाता है बल्कि सलीक़ा भी सिखाता है हमेशा बना रहता है. ...उपस्थित रहता है. वे हमारे भीतर की शक्ति और आत्मा से भी साक्षात्कार कराते हैं. साक्षात्कार ही नहीं कराते बल्कि उसकी धड़कनों को भी सुनाते हैं.

आपकी ग़ज़लों में जीवन के सौंदर्य और संभावनाओं के अनंत स्रोत भी प्रस्फुटित होते हैं, जिसे पढ़ते हुए ठीक उस तरह लगता है कि आपने चंद्र-किरणों को छू लिया है. छू ही नहीं लिया है बल्कि उसमें सराबोर भी हो चुके हैं. कभी तो ऐसा भी लगता है कि हम ग़ज़लों की झील के किनारे बैठकर उसकी लहरों का नर्तन देख रहे हैं. देख ही नहीं रहे है बल्कि अपने अंदर भी उठती महसूस कर रहे हैं और एक निर्वचनीय सुख का आनंद भी ले रहे हैं.

ग़ज़ल-काव्य की वह ज़मीन है जहां हिंदी - उर्दू हो जाती है और उर्दू - हिंदी. आज ग़ज़ल हिंदी में ही नहीं अपितु तमाम भारतीय भाषाओं मे कही जा रही है. यहां तक कि अंग्रेजी भाषा में भी ग़ज़लें लिखी जा रही हैं. इंग्लैंड के अनेक कवि मसलन ब्रियान हेनरी, डेनियल हाल और शेरोन ब्रियान बाक़ायदा अंग्रेजी में ग़ज़लें कर रहे हैं. संभव है कि कुछ समय पश्चात पंकजजी की ग़ज़लों का रूपांतरण अंग्रेजी में या अन्य भाषा में भी होने लगेगा. और यह सुखद संयोग ही होगा.

भारतीय अस्मिता के साहित्यकार गुरुवर रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा है कि साहित्य का उद्देश्य मानव है. इस कथन का निहितार्थ है कि साहित्यकार चाहे जिस भी चीज़ का चित्रण करे- वहां ज़िंदगी अवश्य होगी और वहां मनुष्य भी ज़रूर होगा. आपकी ग़ज़लों में इन विचारों के अनमोल मोती यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरे मिलते हैं. इन्हें चिन्हित करने की आवश्यकता नहीं है.

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री टी. एस. इलियट ने एक जगह लिखा है कि कोई भी कवि अथवा ग़ज़लकार जब भी कुछ लिखता है वह अपने समय को लिख रहा होता है. वह समय से रू-ब-रू होता है. बात स्पष्ट है कि समय को जाने-समझे बग़ैर गीत-ग़ज़ल अथवा कविता लिखी ही नहीं जा सकती और समय को व्यक्त किये बिना कविता अथवा ग़ज़ल हो ही नहीं सकती.

जिगर हों - फ़िराक़ हों - शमशेर हों या फिर दुष्यंतकुमार की भाषा हो - वह भाषा हमारी परंपरा की भाषा है. इस परिवेश के बीच की भाषा गढ़ने का - मूर्तरूप देने का काम पंकज जी ने बड़ी ही ख़ूबी के साथ निभाया है. यही कारण है कि आप उनकी ग़ज़लों में एक विशेष प्रकार की बेचैनी... ताप.... ऊर्जा... ऊर्जा के साथ-साथ भाषा और शिल्पों के जो नये-नये प्रयोग देखते हैं वो भावनाओं और विवेकशीलता की लयात्मकता के साथ - संप्रेषणीनयता भी बनाती है.

आपकी इंद्रधनुषी ग़ज़लों के कोलाज़ में जहां सुख का एक वितान खड़ा दिखाई देता है वहीं दुःख के छींटें भी दिखलाई पड़ते हैं. जीवन के अदभुत रहस्य भी यहां बिखरे पड़े हैं. जहां आप एक ओर अनुशासन की बात करते हैं तो वहीं अनुशासन तोड़ने वालों को लताड़ लगाने से भी नहीं चूकते. देश की हालत देखकर जहां आप तंज़ करते हैं तो वहीं उन चेहरों को अपनी भाषा से बेनक़ाब करना भी नहीं भूलते. वे तमाम छोटी-बड़ी बातें जिन्हें हम या तो विस्मृत कर देना चाहते हैं. अथवा जान बूझकर अपनी आंखों पर पट्टी बांध लेते है, पंकज जी इन बातों को बड़ी ही बेबाकी से कह जाते हैं.

मनुष्य विरोधी विचार हर काल में नये-नये रूपों में उभरते रहे हैं. मनुष्यता को बचाये रखने के लिए रचनात्मक कोशिशें भी अनादि-काल से होती रही हैं. आज के इस टेढ़े-मेढ़े-कठिन समय में पंकज जी मनुष्यता को बचाये रखने का प्रयास ही नहीं करते हैं बल्कि उन लोगों पर प्रहार करने से भी नहीं चूकते जो मनुष्यता के जानी-दुश्मन हैं- प्रबल विरोधी हैं.

अब तक पांच सौ अथवा इससे ऊपर ग़ज़ल संग्रह छपकर पाठकों के बीच आये हैं. यह प्रक्रिया निरंतर जारी रहेगी. और रहनी भी चाहिए. पंकज जी अपनी ग़ज़लों का गुलदस्ता लेकर भले ही देर से आये हों - पर यह सुखकर है. साहित्यिक-बिरादरी में उनका उसी तरह स्वागत-सत्कार किया जाना चाहिए; जिस तरह नयी-नवेली दुल्हन का किया जाता है. पाठकों को उम्मीद ही नहीं बल्कि पूरा भरोसा है कि शीघ्र ही उनके और कई ग़ज़ल-संग्रह उन्हें पढ़ने को मिलेंगे.

१०३ कावेरी नगर, छिंदवाड़ा-४८० ००१.

कविताएं

महंगाई हो गयी सस्ती

✍ डॉ. रीता हजेला 'आराधना'

महंगाई हो गयी है, पांच दशक पुरानी
सत्ता के बाज़ार में अब नहीं वो बिकती
ज़िंदा रहते हुए भी, उतर गया है उसका पानी
इसीलिए महंगाई हो गयी है सस्ती
फ़ुटपाथ पर पड़ी हुई ठोकर खाती हस्ती,
क्या सचमुच सब कुछ हो गया है सस्ता ?
क्योंकि महंगाई का स्वर अब कहीं नहीं उभरता,
भूख से व्याकुल किसान, कर लेता है आत्महत्या,
या बच्चों को बेच कुछ दिन क्षुधा मिटाता,
फिर धान के लिए कलपता,
रुदन करता, मर मिटता,
पर महंगाई का शब्द नहीं निकलता,
जैसे सब कुछ ख़रीद लेने की थी उसकी क्षमता
बस क़िस्मत को ही नहीं थी उससे ममता,
कंप्यूटर और मोबाईल के युग में
दाल रोटी की बात करना,
छिः छिः ये तो है स्तर से नीचे गिरना,
हम बातों की ही तो खाते हैं
बड़ी-बड़ी बातें, बड़े-बड़े सपने,
ग़रीबी भी है अब मुद्दा पुराना
इसको उठा अब मुश्किल है जीत पाना
न ही संभव है इससे सरकार को गिराना
इसीलिए ग़रीबों का अस्तित्व ही दिया गया है नकार,
ग़रीबी अब सिर्फ़ आंकड़ा है
जिस पर नज़र नहीं टिकती,
मगर फिर भी महंगाई से अमीर है
क्योंकि उसके पास अपनी रेखा तो है,
महंगाई के पास तो वह भी नहीं है
देखने वाली नज़र चाहिए
नहीं तो, वो तो अब आंकड़ों में भी नहीं है.
महंगाई और ग़रीबी की तो लोगों को आदत हो गयी है
सालों इसके साथ घिसटते हुए
इनसे समझौता हो गया है अब ये उन्हें नहीं सालते
इसीलिए राजनीतिज्ञ इन्हें नहीं भुनाते
नये मुद्दे ही लोगों को भाते हैं,
नये तर्क, चाहें हों वो कुतर्क मन को लुभाते हैं,
इन्हीं से वो जनता को बहलाते हैं,
नये-नये वादे लेते हैं जन्म,
और प्रसव पीड़ा में ही तोड़ देते हैं दम,
क्योंकि तब तक उनके जन्म का
मक़सद हो चुका होता है पूरा,
जैसे महंगाई और ग़रीबी का,
सब ओर ज़िंदा होते हुए भी
राजनीति में ये गये हैं मर,
क्योंकि राजनीतिक मक़सद
अब वो नहीं कर सकते हैं हल.

६८७, हूडा फेस-२, सेक्टर १२,
पानीपत (हरियाणा) १३२ १०३

पेड़ नहीं होते कभी नंगे

✍ ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'

हमारी दुनिया में
बहुत आसानी से उतार दिये जाते हैं कपड़े,
पेड़ नहीं होते कभी नंगे
वे रखते हैं हमेशा अपनी इज़्ज़त का ख़्याल
हमेशा लपेटे रहते हैं छाल,
हमारी दुनिया में
कपड़ों को उतारना भी एक तहज़ीब है,
एक कला एक व्यापार,
जिसकी पूरी क़ीमत अदा की जाती है
जिसके बदले देखने वाले से
पूरी क़ीमत वसूल की जाती है.

गहराता हुआ रिश्ता

रात जो दुनिया को बांटती है
सुकून और शांति/थपथपाती हुई नींद
और ज़िंदगी से लड़ने के लिए ऊर्जा,
वही रात हमारे बीच मौजूद रिश्तों को
घना और गहरा भी करती है,
उस रात के हिस्से में चांदनी भी आती है,
और उन्मुक्त होकर किसी की चाहत को
आकार-साकार करने की सार्थकता भी.

· ३२, इंदिरा नगर, रतलाम (म. प्र.) ४५७ ००१

नूर मुहम्मद 'नूर'

ग़ज़लें

बेवजह बात बेबात होती रही,
ज़िंदगी से मुलाक़ात होती रही.

जिस तरह अजनबी अजनबी से मिले,
दोस्तों से मुलाक़ात होती रही.

इक तरफ़ जीत के ख़्वाब ज़िंदा रहे,
इक तरफ़ मात पे मात होती रही.

हाय ! लफ़्ज़ों के बाहर कोई क़द न था,
सिर्फ लफ़्ज़ों में औकात होती रही.

नूर कुछ इस क़दर तीरगीबाज़ था,
हर क़दम रौशनी, रात होती रही.

ख़ुशी कम हो रही है, क्या पता क्यों,
हुई जाती है ये शय लापता क्यों ?

जिधर-देखूं, उधर बिल्ली ही बिल्ली,
वह काटे जा रही है, रास्ता क्यों ?

मुझे बेरास्ता जब मानता है,
तो फिर वह शख़्स, रस्ते में मिला क्यों ?

उजाला क्यों नहीं लगता, उजाला,
हवा भी हो रही है, बेहवा क्यों ?

मेरे बाहर का चेहरा, सोचता हूं !
मेरे अंदर के चेहरे से जुदा क्यों ?

मेरा चेहरा तो पथरीला नहीं है,
चटख़ता जा रहा है आईना क्यों ?

उबल कहते, संभल कहते-कहते,
बहुत थक गया हूं ग़ज़ल कहते-कहते.

कहां कुछ बदलता है शब्दों के बाहर,
बदलता है शाइर ग़ज़ल कहते कहते.

हुए ख़ुद वे ज़र्रे-ज़र्रे से ज़रदार देखो,
सुबह शाम रद्दो-बदल कहते-कहते.

कोई क्या करे अब यही उनकी नियति,
हुए लोग कीचड़, कमल कहते-कहते.

झमेले भूल जाना चाहता हूं,
मैं ख़ुद को याद आना चाहता हूं.

कि ख़ुशियों को गंवाना चाहता हूं,
कुछ ऐसे भी कमाना चाहता हूं.

बहुत ख़ामोश हैं, चीख़ें तुम्हारे
मैं दुनिया को बताना चाहता हूं.

मैं तन्हा और जंगल सामने है,
मैं ख़ुद को आज़माना चाहता हूं.

मेरी ग़ज़लें मुझे अब बख़्श भी दो,
मैं बच्चों से निभाना चाहता हूं.

सी.सी.एम. क्लैम्स ला सेक्शन, दक्षिण पूर्व रेल्वे, ३ कोयला घाट स्ट्रीट, कोलकाता - ७०० ००१.

नज़्म

'जन्नत बनायें चलो...

राजेंद्र स्वर्णकार

आसमां को ज़रा तो झुका दीजिए
या समंदर का पेंदा हिला दीजिए
जंग से आप नक़्शा बदल पाएं तो
ज़िंदगानी को महशर बना दीजिए
गंध बारूद की है हवा में अभी
माचिसें-तीलियां सब छुपा दीजिए
राख़ का ढेर बन जाये ना ये जहां
मत शरारों को ज़्यादा हवा दीजिए
मस्जिदों-चर्च से भी बड़ा है ये दिल
नफ़रतों को यहां से हटा दीजिए
ज़िंदगी तो है तोहफ़ा ख़ुदा का, सुनो
शेख़जी ! अपना फ़तवा जला दीजिए
काम मज़हब को दहशत से कोई नहीं
जंग की आयतों को मिटा दीजिए
आदमी, आदमी का पियेगा लहू
क्या करेंगे दरिंदे बता दीजिए
इस ज़मीं पर ही जन्नत बनाये चलो
कुछ ख़ुलूस-ओ-मुहब्बत जमा कीजिए

गिरणी सोनारों का मौहल्ला, बीकानेर- ३३४ ००५

लघुकथाएं

यीशु कृपा

✍ प्रताप सिंह सोढ़ी

केरल के एक छोटे से क़स्बे में सौ साल पुराना एक छोटा सा गिरजाघर. बमुश्किल ईसाइयों के दस-पंद्रह घर. सभी हर रविवार को एकत्रित प्रार्थना में सम्मिलित होते. पादरी ने बाईबल के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करते हुए प्रवचन दिया और गीत गाये. इसके बाद गिरजे की बैंचे खाली हो गयीं. पीछे की बेंच पर अकेला बैठा विलियम बड़े ग़ौर से पादरी को देख रहा था जो डायस पर अपनी कुहनी टिकाये कुछ सोच रहे थे. वह बेंच से उठकर उनके क़रीब पहुंचा और साहस जुटा बड़े विनम्र शब्दों में बोला, "फादर, आप कुछ दिनों से उदास एवं चिंतित दिखाई दे रहे हैं. क्या कारण है इसका ?"

सफ़ेद लिबास में मलबूस पादरी ने सूने गिरजे पर निगाह डालते हुए उत्तर दिया "ऐसा कुछ भी नहीं है."

"है तो ज़रूर जिसे आप बताना नहीं चाहते."

"जानकर क्या करोगे. तुम्हारे पास उसका हल नहीं है."

"मैं उसका हल निकाल सकता हूं." दृढ़तापूर्वक विलियम ने कहा.

इस बार पादरी ने गिरजाघर की टूटी हुई दीवार की ओर इशारा करते हुए कहा, "देख रहे हो इस टूटी हुई दीवार को जिससे हर रोज़ आती हुई सूर्य की किरणें सारे गिरजाघर को आग की भट्टी की तरह तपा देती हैं. हवा के साथ उड़कर सूखे पत्ते एवं धूल के कण चारों तरफ़ गिरजाघर में गंदगी फैला देते हैं. मुझे लगता है कि गिरजाघर में फैली यह गंदगी मेरे जिस्म पर चस्पां होती जा रही है. अभी तक किसी श्रद्धालु ने इस दीवार की मरम्मत के लिए पहल नहीं की. बस यही चिंता मुझे परेशान किये जा रही है." विलियम ने जेब से लिफ़ाफ़ा निकाल पादरी को देते हुए कहा, "इस लिफ़ाफ़े में जो रुपये हैं, उनसे आप दीवार की मरम्मत करवा लें." पादरी को पता था कि विलियम सट्टा, जुआ खेल कर ही अपना गुज़ारा करता है. रुखे स्वर में उन्होंने उत्तर दिया, "सट्टे एवं जुए से कमाये रुपयों से दीवार की मरम्मत कराना मुझे क़तई मंजूर नहीं है."

"नहीं-नहीं ऐसा नहीं है. ये रुपये तो मुझे प्रभु यीशु की कृपा से प्राप्त हुए हैं."

"प्रभु यीशु से कैसे प्राप्त हुए ?" पादरी ने आश्चर्य से पूछा.

"मैंने लॉटरी का टिकिट लिया था और प्रभु यीशु से प्रार्थना की थी कि यदि मेरी लॉटरी खुल गयी तो उन रुपयों से गिरजे की टूटी दीवार की मरम्मत कराऊंगा. प्रभु यीशु ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मुझे सेवा का मौक़ा दिया." पादरी को उसकी ईमानदारी पर अब कोई शक नहीं रहा. विलियम के सिर पर हाथ फेरते हुए वे बोले, "विलियम, प्रभु यीशु तुम पर मेहरबान हो गये हैं और इसलिए तुम भी उनसे जुड़े रहना."

टूटी दीवार से आती सूर्य की किरणें विलियम के चेहरे को दमका रही थी और इस दमकते चेहरे को देख पादरी का चेहरा भी खुल उठा.

५ सुख-शांति नगर, बचौली हप्सी रोड,
इंदौर - ४५२ ०१६

जुड़ाव

✍ सतीश राठी

'साहब, आपके बैंक में अपना बचत खाता खोलना है लेकिन उधर काउंटर पर बैठे बाबूजी मना कर रहे हैं.' - उस मज़दूर महिला ने आकर मुझसे कहा.

'क्यों मना कर रहे हैं तुम्हें ?' - मेरा प्रति-प्रश्न था.

'कह रहे हैं कि तुम परदेसीपुरा में रहती हो तो वहां के बैंक में खाता खोलो. यहां वल्लभनगर में नहीं खोलेंगे.' - उस महिला ने बतलाया.

'ठीक ही तो कह रहे हैं. यहां आना जाना तो तुम्हें बड़ा दूर पड़ेगा. आख़िर यहां पर ही क्यों खोलना चाहती हो तुम अपना बचत खाता ?' मैंने पुनः प्रश्न किया.

'आप नहीं जानते साहब. जब इस बैंक की बिल्डिंग बन रही थी तो मैंने यहां पर ईंटें उठाई थीं. मेरे पसीने की बूंदें गिरी हैं इस मकान की भीत में.' महिला ने नम आंखों से स्पष्टीकरण दिया.

उसके स्पष्टीकरण से मेरी आंखें नम हो गयी थीं. बिना कुछ बोले उसे सामने बैठने का इशारा कर मैं उसके बचत खाते का फॉर्म भरने लगा.

ई २६७९, सुदामा नगर,
इन्दौर - ४५२ ००९

लेटर बॉक्स

❀ 'कथाबिंब' का जु.-सितं. ०४, अंक मिला. धन्यवाद ! आप मुख्यधारा से जुड़े और मंजे हुए व्यक्ति हैं. 'कथाबिंब' के अभी तक तीन अंक पढ़ने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि इसमें छपने वाली प्रत्येक रचना यथार्थपरक एवं जीवन की कठोर-पथरीली चट्टानों से दो-चार होती है. प्रत्येक रचनाधर्मी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सत्य को सुई के नक्के में डले धागे की भांति निकाल देता है. लेकिन इस बार के अंक में 'लेटर बॉक्स' में प्रकाशित पंकज मिश्र के पत्र की बात करूंगा. उनका यह पत्र सच्चाई की कठोर चट्टान को चकनाचूर कर देता है - जब वे मुख्यधारा से जुड़े लोगों से हटकर बाहर और ग्रामीण अंचल की दर्दभरी सच्चाई को उजागर करते हैं - जहां दिन भर खेतों, जंगलों और खदानों में काम करने वाला इनसान रात होने पर रूखी-सूखी खाकर, पुआल और खजूर के पत्तों से बुनी चटाई डालकर बेख़बर सो जाता है. उसे नहीं मालूम कि दूरदर्शन क्या होता है ? पत्र-पत्रिकाओं में क्या छपता है ? वह नहीं जानता कि प्रजातंत्र क्या है ? जीवन की अभिव्यक्ति क्या है और शहर के किसी फाइव स्टार में बैठे बूढ़े और जवान ब्यूटी क्वीनों के नंगेपन को देखकर जीवन का भरपूर आनंद लेते हैं. वे क्या जानें कि फैशन क्या है ? उन्हें नहीं मालूम कि फैशन परेड की बालाएं अपने नंगेपन से किस प्रकार समाज में कलंक का इत्र छिड़क रही हैं कि बूढ़े - यक सफ़ेद बालों वाले भी अपनी बेटियों से बलात्कार कर रहे हैं.

बाहर और दूर गांव तो गांव हैं, मैं दिल्ली की बात करता हूं जो भारत जैसे विशाल देश की राजधानी है. दूर बैठा इनसान दिल्ली के बारे में न जाने कितनी चकाचौंध कर देने वाली स्वप्निल कल्पना करता होगा ? वह क्या जाने कि दिल्ली की आलीशान इमारतों के पीछे बसनेवाली झोपड़पट्टियों में नशीली वस्तुओं का धंधा करने, सेंध मारने, जेब काटने, राहज़नी करने, हत्या और बलात्कार करने वालों की वर्कशापें चलती हैं और पूरे महानगर में फैल जाती हैं. पूरी राजधानी झुग्गी-झोपड़ी कॉलोनियों से अटी पड़ी है - ये जनसंख्या बढ़ाने के बैंक हैं. लोग चीटियों और मक्खी मच्छरों जैसी ज़िंदगी जीते हैं. बाहरी दिल्ली का पश्चिमी क्षेत्र सैकड़ों अनाधिकृत बस्तियों से इस प्रकार अटा पड़ा है कि इन बस्तियों में कच्ची शराब, जुए के अड्डे, वेश्यावृत्ति, चरस, अफ़ीम, गांजा और स्मैक का धंधा धड़ल्ले से पुलसिया छत्रछाया में होता है. अंध महासागर की भांति दिल्ली का ये क्षेत्र विस्तार में दूर तक फैला है, तो यमुना नदी के उस पार के क्षेत्र की अथाह जनसंख्या इरान, इराक़ और मिस्र से भी आगे निकल गयी है. लाखों लोगों की जनसंख्या वाले ये क्षेत्र भेड़-बकरियों जैसी ज़िंदगी जीते हुए जीवन को ढोते नज़र आते हैं. न पीने का पानी, न बिजली की सुविधा, न आवागमन के ठीक साधन ! शैक्षिक और स्वास्थ्य सुविधाओं के नाम पर लूटमार ! पूरा बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और केरल जैसे इन्हीं बस्तियों में आकर

(कुछ और प्रतिक्रियाएं ....पृष्ठ ३ के आगे)

बस गया है और बे रोक टोक जनसंख्या के फल-फूलों का मज़े के साथ उत्पादन हो रहा है.

यहां पूरे देश को करोड़पति पूरी त... ...चील गये हैं. सरकार न्यूनतम तनख़्वाह निर्धारित करती है. लेकिन... ...या कभी किसी सरकार ने इतना जाखिम उठाया है कि वह दे... ...कि न्यूनतम तनख़्वाह मिलती भी है या नहीं ? जिस व्यक्ति को अ... ...पी बारह सौ, पंद्रह सौ या अट्ठारह सौ रुपये प्रतिमाह मिलते हों - ...कैसे अपना, अपने माता-पिता और बच्चों का भरण पोषण करता है ? ये करोड़पति करोड़ों ज़िंदगियों का मूल्यांकन करते हैं. जिसको अ... व्यक्ति समझ नहीं सकता - उसे ही ये साहित्य, कला और संस्कृति कहते हैं. शेष तो ये इनसानों की ज़िंदा लाशों को रौंदते हुए राज करते हैं.

दूर-दराज़ बैठा कोई इनसान क्या जाने कि दिल्ली की सड़कों पर यातायात, नियम-क़ायदों को ठेंगा दिखाता हुआ किसी की ज़िंदगी को पलभर में लील जाता है. यहां ब्लू लाईन बसें लाखों वर्ष पूर्व के डायनासोरों का रूप जीवंत करती हुई प्रतिदिन दस-बीस इनसानों की इहलीला को पीस डालती हैं और नेता कहे जाने वाले लोग दिल्ली को डेनमार्क बनाने की रट लगाते हैं. हत्या, लूट-मार, चोरी, राहज़नी और बलात्कार यहां शीर्ष पर हैं. यहां न लोग, दूधमुंही बच्ची को छोड़ते हैं न सत्तर वर्ष की बुढ़िया को ! बच्चों से कुकर्म भी अब आम बात हो रही है.

लघु पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले हमारे जैसे लोगों को यहां कोई नहीं जानता. यहां तो राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, महीपसिंह, चित्रा मुदगल, राजेंद्र अवस्थी, बशीरबद्र, मैत्रेयी पुष्पा, आदि लेखक-लेखिकाओं को लोग महान मानते हैं. इन्होंने राजीव गांधी को सन ऑफ इंडिया, पी. वी. नरसिम्हा राव को प्रगति का प्रतीक - चांद तक तरक़्क़ी करवाने वाला देवता बोला तो श्री पंकज मिश्र के शब्दों में श्रीमान अटल बिहारी बाजपेयी जी को भूमिपुत्र कहा. इन लोगों को हम सच्चे अर्थों में साहित्यकार कहते हैं, लेखक कहते हैं और कवि कहते हैं. इन्हें नहीं मालूम कि आज भी दूर-दराज़ के लोग चढ़ाइयां चढ़ते और उतरते हैं. उनके पैर उन सर्पाकार पगडंडियों पर चलते हुए लहूलुहान हैं ? भाई ! ये फाइव स्टारी लेखक हैं - ये बाजपेयी सरकार जैसा फील गुड करते हैं. इन्हें क्या ज़रूरत है हम जैसा 'फील बैड' करने की ?

मीडिया को देखो तो वह कनाट पलेस, आई. टी. ओ. दरियागंज और पार्लियामेंट क्षेत्र के बाद और कहीं नहीं जाता. वहीं किसी बस का फोटू, बरसात और गर्मी की तपिश का फोटू, भीड़-भड़क्के का फोटू, किसी बेरोज़गार और किसी भिखमंगे का फोटू दिखा देता है. वह बाहरी दिल्ली के पश्चिमी क्षेत्र और पूर्वी दिल्ली के यमुना पार के क्षेत्र की ओर भूले से भी नहीं देखता. गंदगी और

सड़ांध से उनका सिर फटता है - भीड़ भरी पतली और गंदी गलियों में जाना उनकी शान के विपरीत है.

पंकज मिश्र जी ने श्रीमान् संपादक - कथाबिंब को भी नहीं बख़्शा है. उन्हें मैं सफल संपादक मानता हूं. लेकिन संघी अलाप-भगवा रंग से सराबोर उन्हें भी नहीं छोड़ा है, और मैं अरविंद भाई को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने एक-एक शब्द को पूरी निष्ठा और ईमानदारी से प्रकाशित किया है. सफलता के सींग नहीं होते. ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता, और सच्चाई 'कथाबिंब' के मुख्य गुण हैं.

✣ ज्ञान वर्मा

१०३, प्रताप विहार, पार्ट-१, दिल्ली - ११० ०४१.

❀ जुलाई-सितंबर ०४ अंक में गोवर्धन यादव की लघुकथा 'दस्तूर' बहुत अच्छी लगी, तारिक़ असलम 'तस्नीम' के लेख में नया जोश साफ़ दिखलाईं दिया और वही बात 'चाहत' लघुकथा पर भी कही जा सकती है. मगर दोस्त ! शायर इक़बाल जिसने 'सारे जहां से अच्छा....', लिखा था वही बटवारे का मसीहा क्यों बना इस पर सोचना होगा. एक धर्म दूसरे धर्म पर पत्थर फेंक रहा है तो एक धर्म की जातियों में ईंटें फेंकी जा रही हैं, क्यों ? योजनाएं निरर्थक हो रही हैं, अर्थशास्त्र पूरी तरह पश्चिम पर आधारित हो गया है और अमरीकी बाज़ार हमें गुलाम उपभोक्ता बनाने के लिए मुस्कराते हुए बढ़ रहा है. इस बाज़ार की निरंकुशता के लिए ज़िम्मेदार कौन हैं ? क्या मुसलमान ? क्या हिंदू ? क्या ईसाई ? इस बाज़ार की शक्ति हैं बेईमान राजनैतिक दलाल और भ्रष्ट तंत्र ! उस पर पत्थर उठाने का सामूहिक साहस जब समाज कर पायेगा, उस दिन हर धर्म ठिकाने आ जायेगा.

✣ विजय

बी-१०६, ए. टी. एस. ग्रीन्स-१, सेक्टर-५०, नोयडा-२०१३०७.

❀ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर ०४ अंक अनायास पढ़ने को मिला. कल्पनाशील आकर्षण आवरण पृष्ठ और पठनीय सामग्री से संयोजित भीतरी पृष्ठों ने आत्मिक सुख दिया. एक कथाप्रधान पत्रिका अपनी प्रकाशन-यात्रा के २५ वर्ष पूरे करने जा रही है, यह सूचना मन को आनंद से भर गयी. पत्रकारिता एवं साहित्य के साथ ४०-५५ वर्ष का साथ रहा है. इस कारण मैं भावावेश में किसी पत्रिका की तारीफ़ नहीं करता. मैं 'कथाबिंब' की तारीफ़ कर रहा हूं, यह इस बात का प्रमाण है कि इस पत्रिका में तारीफ़ करने योग्य अपना ख़ुद का कुछ न कुछ अवश्य है. इस अंक की कहानियां हों, ग़ज़लें हों अथवा अन्य विधा की रचनाएं हरेक में आपके चयन-कौशल की छाप स्पष्ट दिखाई देती है. कुछेक लघु कथाओं को छोड़ दें, तो अंक की अन्य सब रचनाएं मुकुट में जड़े मोती की तरह लगी हैं. 'वातायन' स्तंभ के अंतर्गत डॉ. तारिक़ असलम 'तस्नीम' के बेबाक लेख को प्रकाशित कर आपने साहसिक पत्रकारिता का परिचय दिया है. उसके लिए आप एवं तारिक़ साहब, दोनों साधुवाद के पात्र हैं. तारिक़ साहब के तरक़्क़ी पसंद एवं हक़ीकत को बयान करते ख़यालात निश्चित ही मुस्लिम समाज में खदबदा रहे परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं. ख़ुदा ऐसे हिम्मतवर लोगों को ताकत दे, जिससे कि मुसलमान भी अपनी कमज़ोरियों से बरी होकर अन्य लोगों के साथ तरक़्क़ी कर सकें.

'आमने-सामने' स्तंभ के ज़रिये आपने कथाकार श्रीमती मंगला रामचंद्रन से अपने पाठकों को परिचित कराकर आपने बहुत अच्छा काम किया है. मैं उनसे करीब १५ साल से परिचित हूं. उनकी बेटी चंद्रिका और मेरी बेटी सरिता घनिष्ठ सहेलियां रही हैं. दोनों ने ३-४ साल आकाशवाणी, भोपाल के युववाणी कार्यक्रम का धमाकेदार संचालन किया है. उन्हीं दिनों श्री रामचंद्रन एवं मंगला जी से पारिवारिक माहौल में कई बार मिलने का अवसर आया. हमें श्री रामचंद्रन न कभी पुलिस अफ़सर लगे और न मंगलाजी बड़ी कथाकार. दोनों सहज, सरल और अभिमान रहित प्राणी हैं.

अंक की सभी पांचों कहानियां दिल की गहराइयों को छूती हैं और कुछ ऐसा कहती सी लगती हैं, जो या तो हम सुनना नहीं चाहते या फिर सुनकर भी उसकी अनसुनी कर जाते हैं.

अंक की पद्य रचनाएं, ख़ासकर ग़ज़लें काफ़ी प्रभावित करती हैं. इनके कथ्य में नवीनता और नयी ताकत देखने को मिलती है. श्री चांद शेरी और श्री गोपाल कृष्ण सक्सेना 'पंकज' की ग़ज़लें और श्री हरदर्शन सहगल एवं डॉ. देवेंद्र नाथ श्रीवास्तव की कविताएं उम्दा हैं. डॉ. रामविलास शर्मा की भेंटवार्ता पांच साल पुरानी होते हुए भी हमारे साहित्य की नब्ज़ को ठीक-ठाक पकड़ती है. डॉक्टर साहब ने भेंटवार्ता में जो बहस के बिंदु उठाये हैं, उन पर विमर्श होना चाहिए.

सुंदर और सार्थक अंक के लिए बधाई. पत्रिका की यात्रा दीर्घजीवी और यशस्वी हो, यह कामना है.

✣ युगेश शर्मा

सी-५, नेहरू नगर, भोपाल-४६२ ००३.

❀ संयोगवश कथाबिंब का एक अंक कहीं पढ़ने को मिला. जानकर पता चला कि यह एक त्रैमासिक प्रकाशन है और वर्ष १९७९ से साहित्य की सेवा में संलग्न है. आज जब साहित्यिक पत्रिकाएं एक-एक कर दम तोड़ती जा रही हैं ऐसे समय में कथाबिंब का प्रकाशन नयी आशा जगाता है. जहां तक इसकी रचनाओं का स्तर एवं प्रस्तुति की बात है तो यह साहित्य की दृष्टि से अवश्य ही एक उपयोगी प्रकाशन है. 'कथाबिंब' जैसे प्रकाशन ही आज साहित्य को ज़िंदा रखे हुए हैं. लगभग ६० पृष्ठों की यह पत्रिका राष्ट्रभाषा हिंदी की भी अलख जगा रही है. साथ ही लेखकों, कवियों को एक मंच उपलब्ध करा रही है.

✣ प्रवीण जोशी

७, आजाद नगर, भूराखेडी रोड, इंदौर.

निवेदन

रचनाकारों से

'**कथाबिंब**' एक कथा प्रधान त्रैमासिक पत्रिका है. कहानी के अलावा लघुकथाओं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं कागज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों अथवा टंकित करवा कर भेजें.

३. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास रखें. **वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा अवश्य साथ रखें. अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा.**

४. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है, अन्य रचनाओं की स्वीकृति या अस्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

ग्राहकों / सदस्यों से

कृपया समय रहते अपने शुल्क का नवीनीकरण करा लें. नये सदस्यों/ग्राहकों को शुल्क प्राप्त होने की अलग से सूचना भेजना संभव नहीं है. यदि तीन माह के भीतर नया अंक न मिले तो कृपया अवश्य सूचित करें.

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत 'कथाबिंब' त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण :-

१. प्रकाशन का स्थान	: आर्ट होम, शांताराम सालुंके मार्ग,
	: घोड़पदेव, मुंबई-४०० ०३३.
२. प्रकाशन की आवर्तिता	: त्रैमासिक
३. मुद्रक का नाम	: मंजुश्री
४. राष्ट्रीयता	: भारतीय
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	: उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई ४०० ०८८
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	: स्वत्वाधिकारी मंजुश्री

मैं **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.

(हस्ताक्षर - ***मंजुश्री***)

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

प्रारंभ से लेकर अब तक 'कथाबिंब' ने काफी उतार-चढ़ाव देखे हैं. इस दौरान जिन व्यक्तियों या संस्थाओं से हमें सहयोग मिला हम उन सभी के आभारी हैं. 'कथाबिंब' का देश में, एक व्यापक पाठक वर्ग बन गया है. हमारी इच्छा है कि 'कथाबिंब' और अधिक लोगों द्वारा पढ़ी जाये.

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठोस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. ***यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव हो तो कृपया हमें लिखें.***

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, मुंबई
५) डॉ. ए. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, मुंबई
११) श्री अमर ठकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) डॉ. राजनारायण पांडेय, मुंबई
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैया लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, पंचमढ़ी
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कलकत्ता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, अनपरा, सोनभद्र
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, दिल्ली
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, नवी मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह विष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, बुलंदशहर,
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, पटना
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यख़्मी, मुंबई
६१) डॉ. अजय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी', मधुबनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, नवी मुंबई
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्री ज्ञानोत्तम गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेक शर्मा, नवी मुंबई
७२) श्री ए. बी. सिंह, निंबोहड़ा, चितौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी', मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई
७६) श्री गुप्त राधे प्रयागी, इलाहाबाद
७७) श्री महावीर रवांल्टा, बुलंदशहर
७८) श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, फतेहगढ़
७९) डॉ. रमाकांत रस्तोगी, मुंबई
८०) श्री महीपाल भूरिया, मेघनगर, झाबुआ (म. प्र.)

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

८१) श्रीमती कल्पना बुद्धदेव 'व्रज', राजकोट
८२) श्रीमती लता जैन, नवी मुंबई
८३) श्रीमती श्रुति जायसवाल, मुंबई
८४) श्री लक्ष्मी सरन सक्सेना, कानपुर
८५) श्री राजपाल यादव, धनबाद
८६) श्रीमती सुमन श्रीवास्तव, नयी दिल्ली
८७) श्री ए. असफल, भिंड (म. प्र.)
८८) डॉ. उर्मिला शिरीष, भोपाल
८९) डॉ. साधना शुक्ला, फतेहगढ़
९०) डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, मुंबई
९१) श्री राकेश कुमार सिंह, आरा (बिहार)
९२) डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी, भुज-कच्छ
९३) डॉ. उमाकांत बाजपेयी, मुंबई
९४) श्री नेपाल सिंह चौहान, नाहरपुर (हरि.)
९५) श्री रूप नारायण तिवारी 'वीरान', बिलासपुर
९६) श्री जे. पी. टंडन 'अलौकिक', फ़र्रुख़ाबाद
९७) श्री शिव ओम 'अंबर,' फ़र्रुख़ाबाद
९८) श्री आर. पी. हंस, मुंबई
९९) सुश्री अल्का अग्रवाल सिगतिया, मुंबई
१००) श्री मुन्नू लाल, बलरामपुर (उ. प्र.)
१०१) श्री देवेंद्र कुमार पाठक, कटनी
१०२) सुश्री कविता गुप्ता, मुंबई
१०३) श्री शशिभूषण बडोनी, मसूरी
१०४) डॉ. वासुदेव, रांची
१०५) डॉ. दिवाकर प्रसाद, नवी मुंबई
१०६) सुश्री आभा दवे, मुंबई
१०७) सुश्री रश्मि सक्सेना, मुंबई
१०८) श्री मुनी राज सिंह, मुंबई
१०९) श्री प्रताप सिंह सोढ़ी, इंदौर
११०) श्री सुधीर कुशवाह, ग्वालियर
१११) श्री राजेंद्र कुमार सक्सेना, दिल्ली
११२) श्री एन. के. शर्मा, नवी मुंबई
११३) श्रीमती मीरा अग्रवाल, दिल्ली

: प्राप्ति-स्वीकार :

पुंश्चली (क. सं.) : डॉ. वासुदेव, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४३०१. मू. ११०/-
और झरना बह निकला (क. सं.) : डॉ. निरुपमा राय, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४३०१. मू. ८०/-
प्रसाद (ल. सं.) : सुरेंद्र गुप्त, विद्या पुस्तक सदन, शिव मार्केट, न्यू चंद्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली - ११०००७..मू. २००/-
भारत और तिब्बत : सं. विजय क्रांति, भारत-तिब्वत समन्वय केंद्र, १०-एच लालपत नगर-३, नयी दिल्ली - ११००२४ (अ-मूल्य)
अंतरात्मा से... : सदाशिव कौतुक, साहित्य संगम, 'श्रमफल' १५२० सुदामा नगर, इंदौर - ४५२ ००९. मू. १००/-

ऋतुगंध (कविता संग्रह) : डॉ. सूरज मृदुल, चंद्रमुखी प्रकाशन, डी-४ जगजीवन राम गली,
जगजीत नगर, दिल्ली - ११००५३. मू. १५०/-
ग़म ले के फूल दिये (ग. सं.) : डॉ. हरिसिंह 'हरीश', सुमन साहित्य सदन, नया दरवाज़ा, दरिया (म. प्र.). मू. १७५/-
चंद ग़ज़लें (ग. सं.) : प्रमोद अश्क, आलोक प्रेस, गांधी रोड, तिगैलिया, दतिया (म. प्र.) मू. २५/-
आप ही तो मेरे गुरू हैं (क. सं.) : अक्षय गोजा, मीनाक्षी प्रकाशन, एम. बी. ३२/२बी, गली नं. २,
शकरपुर, दिल्ली - ११००९२ मू. १००/-
अपूर्वा (क. सं.) : प्रतिभा पुरोहित, १० गोकुलधाम, कलोल हाईवे, चांदरवेड़ा, अहमदाबाद - ३८२४२४. मू. ५५/-

'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' (मुंबई) के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

संस्कृति संगम (मुंबई की सांस्कृतिक निर्देशिका) : सं. देवमणि पांडेय, मू. १००/-,
और तो और (भजन/ग़ज़ल/नज़्म/गीत) : सुरेश झा 'सुरेश', मू. १००/-
शशि और सुमन (काव्य) : छलिया द्विवेदी, मू. १००/-
अमर पथ (काव्य) : राजेंद्र कुमार पांडेय, मू. ५५/-
शब्द गंगा (काव्य संग्रह) : यूनुस प्रितम, मू. ५१/-
गीत माधुरी (गीत) : रामेश्वर कन्हैया लोहिया, मू. १००/-

'कथाबिंब कहानी पुरस्कार-२००४'

अभिमत पत्र

वर्ष २००४ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७,८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस ***अभिमत पत्र*** का प्रयोग करें अथवा आठ कहानियों का क्रम अलग से **एक पोस्टकार्ड** पर भी लिख कर भेज सकते हैं. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्षों की तरह ही प्रथम (१००० रु.- एक), द्वितीय (७५० रु. - दो) व प्रोत्साहन (५०० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें **'कथाबिंब'** की **त्रैवार्षिक सदस्यता (१२५ रू.)** प्रदान की जायेगी. **'कथाबिंब'** ही एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. **महाभिनिष्क्रमण** - *जयनारायण*	
२. **निर्मोही** - *आलोक पांडेय*	
३. **राइट नंबर : रॉन्ग नंबर** - *सूरज प्रकाश*	
४. **शहतूत पक गये हैं !** - *संतोष श्रीवास्तव*	
५. **खिड़की** - *डॉ. सी. भास्कर राव*	
६. **क्या करेंगे गुहा दा !** - *डॉ. विद्याभूषण*	
७. **क्या यह कत्ल था !** - *डॉ. श्याम सखा 'श्याम'*	
८. **दोस्त बड़ोनी, तुम कहां हो !** - *महावीर रवांल्टा*	
९. **संभालिए अपना राजपाट !** - *रामदेव सिंह*	
१०. **ये अंधेरे... वे अंधेरे** - *डॉ. भगीरथ बड़ोले*	
११. **अब क्षमा याचना नहीं !** - *प्रताप दीक्षित*	
१२. **एक नहीं दो प्रतिज्ञाएं** - *कुंवर प्रेमिल*	
१३. **संगदाह !** - *डॉ. नवनीत ठक्कर*	
१४. **उसे हवा भी नहीं छू सकती** - *मंगला रामचंद्रन*	
१५. **बिरादरी** - *देवेंद्र सिंह*	
१६. **आत्महंता** - *डॉ. सोहन शर्मा*	
१७. **चक्रव्यूह** - *सैली बलजीत*	
१८. **खेल** - *नरेंद्र कौर छाबड़ा*	
१९. **एक थी सांवली** - *संगीता आनंद*	

With Best Compliments
From :

Fairfield Atlas Limited

(Joint Venture with M/s. Fairfield Mfg. Co., Inc., USA)

Manufacturers of
Automobile Transmission Gears
and Gear Systems

ISO/TS 16949 certified

Factory & Regd. Office
SY. No. 157, Devarwadi Village, Off. Vengurla Road,
Tal.: Chandgad, Dist. Kolhapur.

Phone : 02320-236605
Fax No. : 02320 - 236416
Website : www.fairfieldatlas.com

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

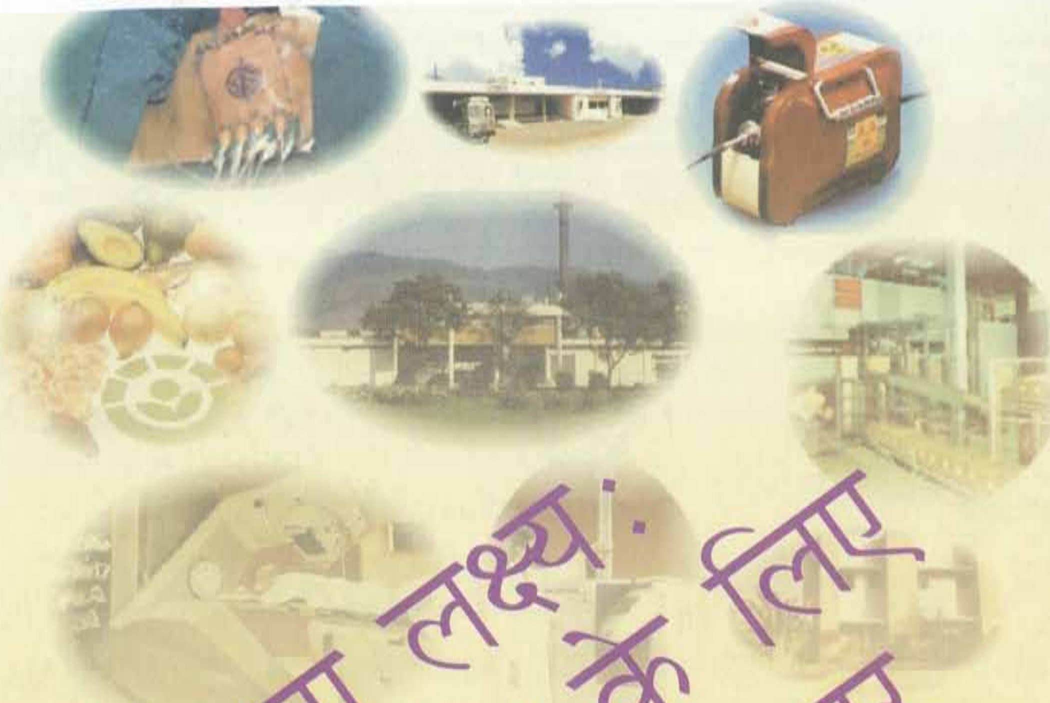

हमारा लक्ष्य :
हमारी जनता के लिए
बेहतर जीवन-स्तर

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड

भारत सरकार, परमाणु ऊर्जा विभाग

बीएआरसी/ब्रिट वाशी कॉम्प्लेक्स, सेक्टर-20, एपीएमसी फल बाजार के सामने, वाशी, नवी मुंबई-400 705.
फैक्स क्रमांक : 022 2556 2161, 2558 1319, वैबसाइट : www.britatom.com, ई. मेल : sales@britatom.com.

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ २३५८ व २५२१ ६२८४.